

स्वदेश-समर्पित, त्याग और तलवार के धनी-

भामाशाह

एवम्

ठा. ताराचन्द

डॉ राजेंद्रप्रकाश भटनागर
पीएच डी (इतिहास)
पीएच डी (आयुर्वेद)

श्री ताराचन्दजी कावेडिया स्मारक सघ
सादडी (जिला पाली) राजस्थान

प्रकाशक—

श्री ताराच दत्त कावेडिया स्मारक सघ
सादडी, जिला पाली
राजस्थान

प्रथम संस्करण, 1987

(वि सं २०४३)

सर्वाधिकार—लेखकाधीन

मूल्य — छत्तीस रुपये

मुद्रक

श्रीम प्रिन्टर्स

36 भूतमहल उज्जयपुर 313001

**BHAMASHAH
AND
THAKUR TARACHAND**

by

Dr Rajendra Prakash Bhatnagar

Ph D (History)

Ph D (Ayurved)

SHRI TARACHAND KAVEDIA SMARAK SANGH

Sadr: (Distt Pali) Rajasthan

समर्पण



राष्ट्रवीर प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम)



समर्पण

जो स्वयं स्वतंत्रता, स्वदेश प्रेम और स्वदेशाभिमान के साक्षात्
मूर्तरूप थे तथा जिनके अपूर्व त्याग शौर्य और बलिदान के
उच्च आदर्श ने भामाशाह एवं ताराचन्द जैसे अनेक
'त्याग और तलवार के धनी' महापुरुषों का निर्माण
किया और उन्हें नित्य प्रेरणा दी उन

प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप

की

पावन स्मृति को

यह कृति

सादर-साभार समर्पित

०

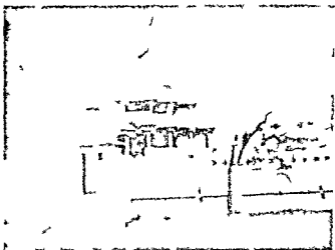
डॉ राजेन्द्रप्रकाश भटनागर



भामाशाह महाराणा प्रताप को घन समर्पित करते हुए ।



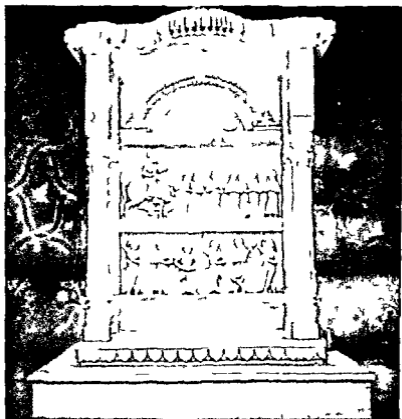
रणथम्भोर का अजेय दुर्ग जहा शाहू भारमल्ल दोघकाल तक किलदार रहा
 भारत के सब गढन म माटा रणथम्भार ।
 तोरथ म चित्ताड बडा उदगम जोहर थम्भार ॥



सिंहवाहिनी महिपामुरमदिनी चण्डिका देवी का मंदिर जावर ।
 इसका निर्माण वसतगढ के महत्तर जेतक न सवत 703 (646 ई) मे
 कराया था । काला तर मे इसका जीर्णोद्धार भामाशाह ने कराया ।



भामाशाह और ठा ताराचन्द, मालवे की लूट से प्राप्त 25 लाख रुपये
और 20 हजार अशफिया महाराणा प्रताप को चूलिया
(ईडर) गाव मे भेंट करते हुए ।



ताराचन्द छत्री का अन्तवर्ती सती-शिला-फलक
 'वीरन के आकाश मे प्रगट भये यो ताराचन्द ।
 उदित देख शशि समनिशा पातल जिय आनन्द ॥

आमुख

डॉ गोपीनाथ रामो

एम ए, पीएच डी डी लिट

निदेशक, राजस्थान इन्स्टीट्यूट ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च

एवम

मानद निदेशक, सेक्टर फार राजस्थान स्टडीज

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

नागरिक जीवन और राज्यमत्ता के सम्बन्ध में प्रशासन और राष्ट्रहित की भावना का बड़ा महत्त्व है। इस पुनीत भावना के अनुसार ही प्रशासन का व्यक्तित्व एक प्रेरक लक्ष्य बनता है। इसके अभाव में व्यक्ति का भौतिक व निजी स्वाध ही लक्ष्य के रूप में ग्रहण रह जाता है। वास्तव में प्रशासन राष्ट्र की सम्पूर्ण व्यवस्था का सनिक हो या असनिक हो तत्र है और अधिनारी उसके यत्र होने हैं। ऐसे अधिकारी राज्य या राष्ट्र के प्रतिनिधि के रूप में शासन की व्यवस्था करने हैं। विजय, सफलता और उन्नति इस सत्य की इतिहास द्वारा प्रमाणित करत हैं।

यह प्रशासन के आदेश का प्रतिनिधित्व हम भामाशाह और उनके उत्तराधिकारियों में पात हैं, जिन्होंने प्रशासन व सनिक की हैमियन से भवाड की निष्ठापूर्वक सेवा की। सेवा लाभ या दम से कभी न जुड़ी क्योंकि उसमें बलिदान त्याग-और नि स्वाध के तत्व बड बलवान् थे। भामाशाह जहा हल्दीपाटी में तत्तवार बजा सकत थे वे प्रशासन द्वारा उन कष्टों के दिनों में अपने स्वामी प्रताप के राज्य को सुदृढ़ और सुशासित रूप में उभार सके। भामाशाह ने अपने पिता की परम्परा की प्रतिष्ठा की अधिक प्राणवान् बनाया जिसके फलस्वरूप उनके वंशज भी उनके अनुसार राज्य के प्रधान बने रहे। इस कावडिया परिवार के हाथ में पीडियों तक प्रधानता बना रहना कोई साधारण घटना नहीं थी। समय समय राज्य व लिए धन जुटाना, सना का सचालन करना प्रजा को धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से सतुष्ट रक्षना, ऐसी उपलब्धिया थीं जिन्हें शायद आगे आनेवाले अन्य वंशों के प्रधान नहीं अर्जित कर सक। मेवाड के गौरव, प्रतिष्ठा और शासन व्यवस्था की अधुण्ण बनाय रखने में भामाशाह का पूरा योगदान था, इसमें कोई सन्देह नहीं।

इसी परिपाटी को इनके भाई तारावन् वंशज जीवाशाह और अण्णराज ने अपनी काय-कुशलता में खूब निभाया। न्यायप्रियता में तारावावडी अपने ढंग की भनूठी है जिसने साम्भ की वावडी अण्ण देवन को नहीं मिलती।

हमारे विद्वान् लेखक डा राजेन्द्रप्रकाश भटनागर माह्व वधाई के पात्र हैं जिन्होंने ममतामयिक ताम्रपत्रों शिलासखों, परवाना पट्टाबलिया, माहित्यप्रथा तथा सद्म ग्रथों का उपयोग कर भामाशाह के व्यक्तित्व को बड़े शाधपूर्ण दृष्टि से उभारने में तथा उनके धनुज ताराचन्द व वशधरा के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने में स्तुत्य प्रयत्न किया है। इस पुस्तक में कई अज्ञात घटनाएँ हमारे सामने आई हैं। सम्भवतः मरी जानकारी में भामाशाह और उनके उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में ऐसा खाजपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है जिस प्रमाणों व तर्कों से सजाया गया हो। कई घटनाएँ जो इसमें समावेशित की गई हैं वे इस महान् आत्मा के जीवन का दर्पण हैं। इस ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग अत्युत्तम है जो भविष्य के शोध का आधार बनना इस आशाक साथ लेखक महादय का मैं पुत्र अभिनन्दन करता हूँ।

उदयपुर

वसंतपंचमी 3187

गोपीनाथ शर्मा

प्राक्कथन

मध्ययुगीन राजस्थान के इतिहास में मेवाड़ के महाराजा प्रताप का नाम अग्रगण्य है। उन्होंने देशभक्ति कुलाभिमान और त्याग का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर भारत के इतिहास में एक स्थान निमित्त कर लिया है। प्रताप की व्यक्तित्व और छादश के अनुरूप ही उनका प्रवास भामाशाह हुआ। प्रताप की विभिन्न रानतिका प्रशामनिक और प्रबन्ध संबंधी कार्यों में भामाशाह का भी विशिष्ट योगदान रहा।

प्रस्तुत ग्रंथ में भामाशाह और उसके वंशजों की उपलब्धियाँ पर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तथ्यात्मक आलाचन प्रस्तुत किया गया है। ग्रंथ के प्रारम्भ में राजाशा के अतिरिक्त शासन और समाज के अर्थ क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तित्वों के कृतित्व विषयक इतिहास-लेखन की आवश्यकता को प्रकट किया गया है। इतिहास का यह पक्ष अब तक अधूरा रहा है।

ग्रंथ में वर्णित भामाशाह के वंश और पिता भारमल्ल के विषय में विवरण काफी उपयुगी है। भारमल्ल ने रणथम्भोर की तिलदारी की जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुए मेवाड़ राज्य की प्रति जा निष्ठा और योग्यता प्रदर्शित की, उस संबंध में दिया गया कृतपोत्ररूप विवेचन नये तथ्यों का प्रकट करता है।

लोक ने भामाशाह की बाल्यकाल में प्रताप से घनिष्ठता हल्दीघाटीयुद्ध में उसकी और उसके भाई ताराचन्द की युद्धकुशलता तथा इससे सम्बन्धित ग्रंथ घटनाओं पर अचूक प्रकाश डाला है। मेवाड़ में नयी व्यवस्था प्रबन्ध कायम करना तथा उसमें भामाशाह द्वारा आर्थिक योगदान आदि तथ्यों को युक्तिपूर्वक सप्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जो मूल्यवान् स्तुत्य है।

भामाशाह के अतिरिक्त इस ग्रंथ में उसके अनुचर ताराचन्द संबंधी उपलब्धियाँ पर विवरण दिया गया है। भामाशाह के साथ ताराचन्द ने भी हल्दीघाटी युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उस प्रताप ने मेवाड़ का हार्मिक बनाया था। उसने सादसी में रहते हुए न केवल सैनिक अभियानों का संचालन किया अपितु उनमें बड़ा मुगल दरबार की आला पर मंगीत कला और साहित्य को प्रथम देखकर उनकी उपलब्धि में रुचि ली थी। बड़ा उसके द्वारा नियमित रूप कायम अब तक विद्यमान है। अब तक उपलब्ध इतिहास में ताराचन्द का व्यक्तित्व इतना उभर कर सामने नहीं आता जितना इस ग्रंथ में स्पष्ट किया गया है। भामाशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जीवाशाह और उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र अजयराज मेवाड़ का 'प्रधान' नियुक्त हुआ। अजयराज द्वारा डूंगरपुर पर आक्रमण का वृत्त यहाँ प्रथम बार विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

हमारे विद्वान् लख डों राजेन्द्रप्रकाश भटनागर साहब बघाई व पात्र हैं जि हा
 मममामयिक ताम्रपत्रो शिलालेखा, परवानो पट्टावलिया, माहित्यग्रन्थो तथा सदम
 यथा का उपयोग कर भामाशाह व यवितस्व को बडे शाधपूण दृष्टि से उभारन म तय
 उनक अनुज ताराचन्द व वशधरा व यवितस्व पर प्रनाश डालने म स्तुत्य प्रयत्न क्रिय
 है। एम पुस्तक से कई घात घटनाए हमारे सामन आई है। सभवत म
 जानकारी म भामाशाह और उनके उत्तराधिकारियो व सम्बध म तेमा खाजपूण प्र
 प्रकाशित नही हुआ ह जिस प्रमाणा व तर्को स सजाया गया हो। कई घटनाए ज
 इसम समावेशित की गई हैं व इग महान् आत्मा क जीवन का दपण हैं। इस प्र
 का परिशिष्ट भाग अत्युत्तम है जो भविष्य क शाध वा साधार वनग इस आशा
 साथ लेखक महादय का मैं पुग अभिनन्दन करता हू।

उज्जयपुर

वम तपधमी 3 1 87

गोपीनाथ शर्मा

प्राक्कथन

मध्ययुगीन राजस्थान के इतिहास में भवाड के महाराजा प्रताप का नाम रम्य है। उन्होंने देशभक्ति कुलाभिमान और त्याग का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर भारत के इतिहास में एक स्थान निर्मित कर लिया है। प्रताप के वीरत्व और घादश के अनुरूप ही उनका प्रधान भामाशाह हुआ। प्रताप के अतिरिक्त राजनिक प्रशासनिक और प्रबंध संबंधी कार्यों में भामाशाह का भी अशिष्ट योगदान रहा।

प्रस्तुत ग्रंथ में भामाशाह और उसके वंशजों की उपलब्धियाँ पर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तथ्यात्मक आलाचन प्रस्तुत किया गया है। ग्रंथ के प्रारम्भ में भामाशाह के अतिरिक्त शासन और समाज के ग्रंथ क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तित्वों के वृत्तिक विषयक इतिहास-लेखन की आवश्यकता का प्रकट किया गया है। इतिहास का यह पक्ष अब तक अज्ञात रहा है।

ग्रंथ में वर्णित भामाशाह के वंश और पिता भारमल के विषय में विवरण काफी उपयुगी है। भारमल न रणधम्मर की किलेपारा की जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुए भवाड राज्य के प्रति जो निष्ठा और योग्यता प्रदर्शित की उस संबंध में दिया गया ऊहापोह रूप विवेचन नये तथ्यों को प्रकट करता है।

लेखक ने भामाशाह की बाल्यकाल में प्रताप से घनिष्ठता हथीवाटीयुद्ध में उसकी और उसके भाई ताराचन्द की युद्धकुशलता तथा इसमें सम्बन्धित अथ घटनाओं पर प्रच्छा प्रकाश डाला है। भवाड में नयी व्यवस्था प्रबंध कायम करना तथा उसमें भामाशाह द्वारा आर्थिक योगदान आदि तथ्यों को युक्तिपूर्वक सप्रमाण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है, जो सबका स्तुत्य है।

भामाशाह के अतिरिक्त इस ग्रंथ में उनके अनुज ताराचन्द संबंधी उपलब्धियाँ पर विवरण दिया गया है। भामाशाह के साथ ताराचन्द ने भी हन्दीवाटी युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। उन प्रताप ने मोठवाड का हस्तगत बनाया था। उसी सादही में रहते हुए न केवल मलिक अभियानों का संचालन किया अपितु उनमें बड़ा मुगल दरबार की सेवा पर समीत बना और साहिब की प्रथम दफ्तर उनकी उत्पत्ति में रुचि ली थी। बहा उसके द्वारा रिये गये निर्माण काय अब तक विद्यमान हैं। अब तक उपलब्ध इतिहास में ताराचन्द का व्यक्तिव इतना उभर कर सामने नहीं आता जितना इस ग्रंथ में स्पष्ट किया गया है। भामाशाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र जीवागत और उनकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र सप्तपराज भवाड का प्रधान नियुक्त हुआ। सप्तपराज द्वारा टूंगरपुर पर आक्रमण का वर्णन बहा प्रथम बार विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार इस कृति में भामाशाह और ताराबाद के इतिहास पर सर्वांगीण रूप में प्रकाश डाला गया है। नवीन घटनाओं और तथ्यों को इतिहासपरक तक शक्ती में प्रस्तुत कर अपनी भाषाशास्त्री को प्रकट करने में यह रचना विशेष रूप से सहाय्य बन गयी है।

इस ग्रन्थ के लेखक डॉ. रवीन्द्रप्रकाश भटनागर बघाई के पात्र हैं। ध्यानाकर्तव्य है कि वह इसी प्रकार शायद योज्यपूर्ण ग्रन्थों को लिखकर इतिहास की महत्वपूर्ण कड़ियाँ को प्रकट करने में योग देंगे।

डॉ. बी. एस. मायूर
 प्राचार्य इतिहास विभाग
 मुंबाई विश्वविद्यालय
 उदयपुर (राज.)

दो शब्द

अपनी अस्मिता और गौरवपूर्ण इतिहास को जानने और समझने की ललक सभी सभ्य ममाजा में होती है। सामाजिक मक्रांतिक काल में तो यह ललक अधिक तीव्र हो जाती है। दरमसल इसी ललक से हम इतिहास के फलक में वर्तमान को विभिन्न कोणों तथा तरीकों से देख सकते हैं लेकिन इसे देखने और समझने में हमारी दृष्टि एकांगी तथा पूवाग्रही नहीं हो, यह महत्वपूर्ण है।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि सम्राट हर्षवर्द्धन (606-647 ई.) के पश्चात् भारत में राजनीतिक दृष्टि से केन्द्रीय सत्ता का अभाव में टूटन और विघटन की एकी विषम स्थिति उत्पन्न हुई कि विदेशियों का यहां आकर अपार सम्पत्ति का लूटन और अपना शासन स्थापित करने में विशेष अवरोध नहीं आया। मध्ययुगीन में राजनीतिक पराजय का मुख्य कारण राष्ट्रीय एकता का अभाव राजनीतिक चेतना की कमी कुशल संगठनशक्ति का अभाव और दूर स्वार्थों का प्राबल्य रहा। विदेशी आक्रान्ताओं और भारतीयों के मध्य सत्ता संघर्ष होता रहा। जननेताओं के ईमानदार प्रयत्नों की कमी भी इसका एक कारण रही। इस सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि जब भी राष्ट्रीय एकता के लिए प्रतिबद्ध होकर जनता और शासकों ने मिलकर युद्ध लड़ा वहां विजयश्री ही प्राप्त हुई। इतिहास में उन्हीं जननेताओं को याद किया जाता है जिन्होंने राष्ट्रीय सांस्कृतिक एकता और गौरव के लिए त्याग और बलिदान किए हैं। वे ही महापुरुष इतिहास के धवन नभश्च हैं और अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रेरक होते हैं। समाज और राष्ट्र के विकास समृद्धि और उन्नयन में ऐसे महापुरुषों का योगदान अनेकनीय रहता है।

इतिहास मान तिथि-पत्रक नहीं है, वह हमारी सांस्कृतिक राजनीतिक जीवन धारा सामाजिक संस्कृति और हमारे महापुरुषों की गाथा भी है हमारा सांस्कृतिक सामाजिक धरोहर को समझने परखने तथा अस्मिता का पट्टेचानने की प्रक्रिया भी है। इन महापुरुषों की जीवनपद्धति उनके क्रिया कलाप हमारे लिए आदर्श और प्रेरक हैं। इसीलिए इतिहास व मस्तिष्क के योग और मनुष्य के अध्ययन का प्रयास जरूरी है। इतिहास अथवा कृष्णको दालना प्रक्रिया तथा साहित्यिक ग्रंथों का अध्ययन चिंतन कर हम विश्लेषण करना है। यह चिंतन अथ साध्य व समय साध्य काय है। तात्कालिक लाभ और हमें नष्ट करेगा कि और निष्ठा से ही यह प्रयत्न सफल हो सकता है। हमें इतिहास का गहन प्रकाश अन्तर्गत की यह कृति भामाशाह और ताराबन्धु' मद्रास है। इन दोनों नामों के अर्थ शोधक और अपने विषय में दक्ष विद्वान हैं। इतिहास में वे अनेक नामों ने भामाशाह व ताराबन्धु के सदृश में अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों का अन्वेषण समाकलित किया है।

राजस्थान के मध्ययुगीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि राजपूत शासन में वश्य और कायस्थ योद्धा व साथ कुशल सगठक तथा प्रशासक के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। कीर्तिपुरुष महाराणा प्रताप के साथ दानवीर भामाशाह का स्मरण इतिहास का एक अकाट्य प्रमाण है। वश्य वधु भामाशाह और ताराचंद भारमल्ल के पुत्र थे और प्रताप के मित्र। भारमल्ल कावडिया गोत्र के ओसवाल जन थे। भारमल्ल स्वयं वीर व कुशल प्रशासक थे तथा लम्बे समय तक रणयम्भोर व किलेदार रहे हैं। राणा मग्नसिंह (सागा) ने अपनी पत्नी रानी कमवती तथा पुत्र विश्रमादित्य व उदयसिंह को रणयम्भोर भेज दिया था। भारमल्ल राणा सागा की मृत्यु के पश्चात् राजपरिवार के साथ चित्तौड़ आ गये थे। उदयसिंह ने भारमल्ल की कृत्त व्यशीलता व विश्वसनीयता व कूटनीतिज्ञता व कारण एक साथ का पट्टा देकर सामन्त बनाने में सहायता किया था। अक्टूबर में विस 1624 में चित्तौड़ पर हमला किया तब भारमल्ल चित्तौड़ ही रहे और युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए लेकिन उन्होंने अपने दोना पुत्रों को उदयसिंह के साथ कुम्भलगढ़ भेज दिया था।

भामाशाह राणा प्रताप से सात वर्ष छोटे थे और ताराचंद भामाशाह से चार वर्ष। भामाशाह के चारित्रिक गुणों और कार्यों का वर्णन इतिहास का एक अविस्मरणीय पन्ना है। उनके लघु भ्राता ताराचंद का योगदान भी रेखांकित किया जाता है। मेवाड़ के पुनर्गठन और पुनर्व्यवस्था का श्रेयार्थित करने में प्रधान भामाशाह का सराहनीय योगदान रहा है। वे अनुभवी और कुशल प्रबंधक थे। देशभक्ति और स्वामीभक्ति के लिए भामाशाह एक दृष्टांत हैं। सत्ता का प्रतीक उन्हें अपने कर्तव्य से अलग नहीं सता। मुगलों के युद्धों में से मेवाड़ की आर्थिक व सैन्य स्थिति विगड़ गई। राजकीय खाली हो गया घन जन की हानि हो गई और ऐसी विपन्न स्थिति में भामाशाह ने अपने पास का सम्पूर्ण धन महाराणा प्रताप को मेवाड़ की अस्तित्व रक्षा के लिए अर्पित कर लिया। त्याग व दान की भामाशाह जीवन्त मूर्ति थे। दानी भामाशाह को मेवाड़ हमेशा याद करता रहेगा। भामाशाह के सदृश उनके लघु भ्राता ताराचंद वीर व कुशल प्रशासक थे। गोडवाड़ प्रदेश के गवर्नर नियुक्त होने के पश्चात् ताराचंद ने अपने क्षेत्र के समुचित विकास व उन्नयन की ओर ध्यान दिया। ताराचंद की स्थापत्य साहित्य संगीत तथा ललित कलाओं के प्रति गहरी रुचि थी। उनके आश्रय में कई संगीतकार नृत्य साहित्य श्रेणी व कलाश्रेणी रहे हैं। उस जनसंख्या के काल में ललितकलाओं की प्रारंभिक ध्यान देना तथा प्रोत्साहित प्रेरित करना एक महत्वपूर्ण बात थी। दुर्भाग्य से ताराचंद की मृत्यु 44 वर्ष की आयु में ही हो गई।

वस्तुतः जन धमाकलम्बी उदारधार्मिक सहिष्णु भामाशाह और ताराचंद ने मेवाड़ के शौर्य और सम्मान को अक्षुण्ण बनाए रखने में अपनी कारगर भूमिका का निवाह किया है।

ऐसे कीर्तिपुरपो पर रचनात्मक लेखन कम नि सदेह एक प्रशसनीय काय है । इन महान विभूतियों की जीवन गाथा प्रेरणा और प्रोत्साहन देती है व पथ प्रदर्शक भी है । डा राजेन्द्रप्रकाश भटनागर न इनके समग्र जीवन को समाकलित कर गौरवपूर्ण व धर्मसाध्य काय किया है । कृति का परिणित भी महत्वपूर्ण व विशिष्ट है । डा भटनागर की भाषा शली नि सदेह प्रभावित करती है । उनक सरल शात व परिथर्मी स्वभाव की छाप इस कृति म है । राष्टीय अस्मिता तथा गौरव के लिए मघपरत वतमान पीढी के लिए यह कृति प्रेरक हागी, एसी आशा है ।

विश्वास है सुधिजन इस कृति का हार्दिक स्वागत करेंगे ।

उज्जयपुर

दि 10 फरवरी, 87 ई

डाँ लक्ष्मीनारायण नन्दवाना

सचिव

राजस्थान साहित्य अकादमी

उज्जयपुर ।

शुभसम्मति

पृथ्वीसिंह मेहता

विद्यालकार

संगर-हमारा राजस्थान (अर्थात् प्राधुनिक राजस्थानी भाषा भाषी प्रदेश का ऐतिहासिक पर्यालोचन), बिहार एवं ऐतिहासिक दिग्दर्शन

भारतीय इतिहास में प्रायः राजा महाराजाध्यायों के कार्यों का ही बर्णन होता रहा है। ऐसे बहुत कम व्यक्तित्व हैं जिनका उल्लेख राजा महाराजाध्यायों के बर्णन शाब्दिकों के पार कर जाता तब पढ़ने पाया है। मन्साह के भामाशाह उन छोटे से व्यक्तित्वों में अग्रतम है जिन्होंने अपने अमित पराक्रम असाधारण राजनीतिक सूक्ष्म बुद्धि अत्यन्त स्वामी (अपने राज्य की प्रभुशक्ति के प्रति) अति घोर धार्मिक त्याग का ऐसा उदाहरण पेश किया जो भारतीय जनता के हृदय में आज उदाहरण रूप धारण कर लोगों को प्रेरणा देता रहता है। स्वाधीनता-संग्राम पर जब कुछ बहाने वाले। धर्मियों का ज मदाता कुल हो गयी हमारा। (गुरुकुल कागड़ी में गये जा वाले कुलगीत की एक वही) और जो देश के धर्मियों का आदेश माग बन गया सा लगता है।

सचिन दुर्भाग्य से भामाशाह के जीवन पर अभी तक कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री भारत की या किसी भी अन्य देशी विदेशी भाषा में उपलब्ध नहीं थी। मेरे मित्र श्री राजद्रप्रकाश जी भट्टाचार्य ने अपनी इस छोटी सी परिचय में पहली बार उनके जीवन पर विधिवत रूप से प्रकाश डालने का जतन किया है और साथ ही भामाशाह के ऐतिहासिक व्यक्तित्व का मूल्यांकन भी उन्होंने पहली बार प्रस्तुत किया है जिसके लिए हम सब मन्साह लोग उनका धाम्भार मानते हैं और आशा है कि आगे आने वाले दूसरे लोग भी उस ऐतिहासिक महापुरुष तथा अत्यन्त ऐसे ही व्यक्तित्वों के जीवनो पर इसी दिशा में प्रकाश डालने का जतन करेंगे, जिससे राजस्थान इतिहास का जो स्वरूप जनता के सामने आता रहा है वह केवल एक जाति या वर्ग विशेष का स्तुति गान न होकर राजस्थान की मारी जनता के पराक्रमों और क्रियाकलापों का क्रमिक और सतुलित इतिहास बन सके।

शिवकुटी उदयपुर

पृथ्वीसिंह मेहता

प्रस्तावना

इतिहास का निर्माण राजा और प्रजा के द्वारा होता है। केवल घटनाओं का ही इतिहास नहीं है। इतिहास में समाज के हर क्षेत्र की उन्नति और उन्नति के क्रम को स्वीकार किया जाता है। पूरा इतिहास वही है जिसमें मकब्रों के साथ शामिलित्व के सब प्रकार के योगदान को क्रमिक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जब शासकवर्ग का प्रमुख रहा उनके काल और संरक्षण लिखा गया इतिहास एकांगी और उन तक ही सीमित रहा परंतु देश की उन्नति के पश्चात् शासक विशेष के साथ जन प्रतिनिधियों द्वारा अज्ञित की गई लिखितियों को सर्वांगीण रूप से प्रस्तुत करने की आवश्यकता अनुभव की जानती है, जिससे समाज और देश के किसी न किसी क्षेत्र पर प्रभाव पड़े बिना नहीं सकता। समाज के ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों के राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, विज्ञान आदि विभिन्न परिवेशों में समुचित मूल्यांकन को समसामयिक प्रमाणों और साक्ष्यों के माध्यम से प्रकट करने से ही इतिहास पूरा बन पाता है। ऐसा ही इतिहास राष्ट्रीयता को जागृत कर सकता है समाज को नया बनाने, प्रेरणा और उदबोधन दे सकता है। हर देश और प्रदेश के ऐसे व्यक्तित्वों का मूल्यांकन भी तत्कालीन परिस्थितियों तथा नैतिक व सामाजिक मूल्यों और आवश्यकताओं के आधार पर ही किया जाना चाहिए इतिहासकार यह न भूले कि अतीत-काल परिस्थितिवशात् ये मूल्य और मायताएँ हमेशा परिवर्तित होती रही हैं। वर्तमान परिस्थितियों और विचारों के आधार पर आज से दस-तीन सौ वर्षों के अतीत पुराने व्यक्तियों के व्यक्तित्व को आका नहीं जा सकता। ऐसा करना अतिहासिक भूल होगा।

इतिहास की विभिन्न कड़ियों को बटार कर अब नवीन-स्वदेशीय इतिहास निर्माण की आवश्यकता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का आज उसके व्यक्तित्व से ही मूल्यांकन किया जा सकता है।

पुराने समय में राजा और प्रजा के लिए उसका राज्य ही राष्ट्र था, उनके अर्थ-क्रियाकलाप उसके लिए ही समर्पित होते थे। भारत में एक अन्दर मानभूमि के अन्तर्गत उसके राज्य से ही किया जाता था किन्तु भारत के बाहर वह भारत की सीमाओं के रूप में समझा जाता था।

हमारी परम्पराएँ राजनीति और समाज के हर क्षेत्र में, निश्चित रूप से नए आघातों व्यवधानों और अन्तरालों के बावजूद अविचल रही हैं। अतीत का मूल खोज पाना बहुत कठिन है फिर भी व्यक्ति विशेष के क्षेत्र विशेष में योगदान को प्रकट किया जाना सुगम है।

महाड इतिहास में शासकों के अनिश्चित महापुरुषों की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की जा सकती है जिन्हां विभिन्न क्षेत्रों में देश-काल-परिस्थिति के अनुरूप महत्वपूर्ण योगदान किया। ऐसे महापुरुषों में भामाशाह और उमक भाई ताराबा-या नाम अग्रपंक्ति में सम्मिलित किया जा सकता है। इन बापुओं और उनके यशों के कारणों पर ऐतिहासिक परिप्रक्ष्य में एक विवचन, सर्वोत्तम और मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयत्न इस कृति में किया गया है।

इस काम के लिए मुझे समय-समय आदरणीय श्री बलवंतसिंह जी मेहता रेनसैरा उदयपुर में प्रेरणा और गुणाव प्राप्त होते रहे हैं। अतः मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे हमेशा उनका स्नेह मिलता रहा है।

पुस्तक का आद्योपात्त आलोचन कर उम पर 'आमुष्' लिख देने की कृपा प्रसिद्ध इतिहासविद परम सम्माननीय श्री डॉ. गणेशनाथ शर्मा ने की है। एतदर्थ मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

मुम्बईया विश्वविद्यालय उदयपुर के इतिहास विभाग के आचार्य श्री डा. बी. एन. मायूर माहय ने अग्र पर प्रावचन एक श्री डॉ. लक्ष्मीनारायण जी नन्दवाना निदेशक राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर ने समीक्षात्मक लोकावलि लिखकर महती कृपा की है। इसके लिए लेखक उनका आभारी है। आदरणीय श्रीमान पद्मवीसिंह जी मेहता ने कृपापूर्वक अपना सम्मति लिखकर मुझे कृतज्ञ किया है। अतः लिए मैं हृदय से आभार पापित करता हूँ।

अग्र के प्रकाशन और मद्रक महादय को भी मैं साधुवाद देता हूँ जिनकी रुचि और परिश्रम से इसका प्रकाशन हुआ है।

उदयपुर

डा. राजेंद्रप्रकाश भटनागर

13 फरवरी, 1987

विषय-सूची

- 1 विषय प्रवेश पृष्ठ 1
- 2 भामाशाह का वंश और पिता भारमल्ल 3
 वंश पिता और माता भारमल्ल रणेभम्भोर की कित्तदारो, एक लाख का पेटा और सामन्त का पद प्राप्त करना, घम प्रेम घनी अन्तिम दिन ।
- 3 भामाशाह 12
 जन्म और प्रारम्भिक जीवन विवाह हल्दीघाटा युद्ध प्रधान' का पद प्राप्त होना, प्रजापालन एवं प्रबंध मालवा को लूटना, दिवर पर अधिकार, बादशाह के प्रलोभन को ठुकराना, चावड म नयी राजधानी कायम करना मथाड पर पुन अधिकार आर्थिक सहयोग अहमदाबाद अभियान, घम प्रेम उदार दानी निर्माण काय अन्तिम दिन और मृत्यु मूल्यांकन ।
- 4 ताराचन्द 43
 जन्म व बाल्यकाल हल्दीघाटी का युद्ध, गोडवाड का गवर्नर, मालव की लूट मालवे पर दूसरा अभियान घम प्रचार कला और साहित्य के प्रति अभिरुचि ताराबावडी मयु और मूल्यांकन ।
- 5 भामाशाह के वंशज 54
 जीवाशाह— प्रधान' पद पाना मय संचालन म सहयोग बादशाह जहागीर सेंट ।
 अश्वराज कावडिया—परिवार राज्य सम्मान प्रधान का पद डूगरपुर पर आक्रमण ।
 भामाशाह के परवर्ती वंशजों को राज्य सम्मान और जातीय सम्मान ।
- 6 भामाशाह की पुत्री 'जगीशा बाई' का वंश 63

1 पुगलेखीय और साहित्यिक प्रमाण संग्रह

- 1 ताम्रपत्र
- 2 शिलालेख
- 3 परवाना
- 4 पट्टावली
- 5 साहित्यिक ग्रंथ

2 इतिहासकारों और साहित्यकारों की दृष्टि में भामाशाह

3 सहायक ग्रंथ सूची

कुल पृष्ठ संख्या 16 + 104

संकेत - सूची

वी वि	—	वीरविनोद
राज का इति	—	राजपूताना का इतिहास
उद का इति	—	उदयपुर राज्य का इतिहास
एनल्स	—	एनल्स एण्ड एंटीक्यूटीज ऑफ राजस्थान
रा प्रा वि प्र	—	राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
Annals	—	Annals and Antiquities of Rajasthan

1. विषय-प्रवेश

इतिहास का निर्माण महापुरुषों से होता है। महापुरुषों के व्यक्तित्व और कृतित्व न केवल समकालीन समाज, प्रदेश और राष्ट्र को अनुप्राणित करते हैं अपितु युग पथन प्रेरणा का स्रोत बने रहते हैं। समाज और राष्ट्र के विकास, समृद्धि और उन्नयन में ऐसे महापुरुषों के किसी न किसी रूप में योगदान की कदापि भूलाया नहीं जा सकता।

राजस्थान के मध्ययुगीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण तथ्य रहा है कि राजपूत साम्राज्य उत्तम कोटि के योद्धा अवश्य थे परन्तु प्रायः अच्छे संगठनकर्ता और प्रशासक नहीं थे। राजपूत-इतिहास का पीछे मन्त्रिष्क मुख्यतया कायस्थों और वश्यों तथा आशिक रूप से ब्राह्मणों द्वारा प्रदान किया गया।¹ राजस्थान का गौरवपूर्ण इतिहास तब तक पूर्ण नहीं हो सकता जब तक ऐसे राजपूत-महान् व्यक्तियों के जीवन और शिवाकावियों की उजागर नहीं किया जाता। इनके संबंध में प्रायः जो कुछ इनके पारिवारिक संग्रहों में अतिरिक्त राजकीय संग्रहों में उपलब्ध दस्तावेजों, किम्बदंतियों, कथाओं, ग्रंथों तथा तत्कालीन इतिहास ग्रंथों, प्रशस्तियों, दानपत्रों, स्तूप-शिलालेखों के माध्यम से की जानी चाहिए। राजपूत राज्यों का वास्तविक और व्यावहारिक रूप में प्रशासन इन राजपूत-व्यक्तियों के हाथ में ही रहा। राजस्थान का इतिहास की महत्वपूर्ण परम्पराओं और कथियों का निर्माण ऐसे ही पुरुषों के द्वारा हुआ है इसमें दो शक नहीं। राजपूत राज्यों में 'प्रधान' का सर्वोच्च पद मंदब या तो किसी कायस्थ को ग्रहण

1 डॉ० बालिभारजन का नूतनमो न उचित ही विज्ञा है —

'The Rajput was essentially a grabbing warrior, and no organizer or administrator. The brain behind the Rajput history was supplied mostly by the Kayastha and the Vaishya and partly by the Brahman. A history of Rajputana worthy of the name cannot be written till further researches are made into the family records of these non-Rajputs, who practically ruled the Rajput principalities and manned their whole civil administration. They have a legitimate share of the glory that history has hitherto assigned to the Rajput exclusively. (Studies in Rajput History) P 50)

किसी वैश्य को सौंपा जाता रहा। ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता जिसमें किसी राजपूत को यह पद दिया गया हो। इसके अतिरिक्त राज्य के प्रशासनिक पदों 'वामदारो' के पदों पर भाये लोग नियुक्त किये जाते रहे। इसके दो मुख्य कारण माने जा सकते हैं। कायस्थों और वैश्यों में यह गुण रहा है कि जब परिस्थिति उपस्थित हुई तब उ होने एक और थोड़ा का काय किया तो दूसरी धार प्रशासन और कूटनीति संबंधी कार्यों का भी कुशलता से संपादन किया। इसके अतिरिक्त, किसी सैनिक अभियान में विभिन्न राजपूत कुलों और वंशों के लोग अपने शासकों को छोड़कर अन्य किसी शाखा के राजपूत सरदार की अधीनता में जाना पसंद नहीं करते थे, अपितु किसी राजपूतों के प्रधान के अधीन सैनिक अभियान में जाने से नहीं हिचकिचाते थे। इसलिए इन राजपूत राज्यों के सैनिक अभियानों का नेतृत्व (कमांडर इन चीफ) भी इन्हीं कायस्थों और वैश्यों ने ही समय समय पर किया। इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य की ओर विशेष ध्यान दिया जाकर इतिहासके इन विशिष्ट निर्माताओं के जीवन और कार्यों का प्रकाशन अब आवश्यक बन गया है। डॉ० गौरीशंकर हीराचंद श्रोत्रिया ने उदयपुर राज्य के इतिहास में नर राजपूत घरानों और उनके द्वारा किये गये कार्यों का संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रकाशित किया है परंतु इस विवरण में कई वंशों की उपलब्धियों का वर्णन छूट गया है। जोधपुर, जयपुर और अन्य राजपूत राज्यों के कायस्थों, वंशों ब्राह्मणों चारणों भाटा आदि की इस प्रकार की सेवाओं की विवरण संबंधी सामग्री भी प्रचुर मिलती है।

ऐसे ही वैश्य महापुरुषों में भामाशाह का नाम अग्रतम है, जिसने मेवाड़ के दुर्दिनों में अपने धार्मिक, बौद्धिक और सैनिक योगदान द्वारा एक सबल का काय किया। इसलिये उसे मेवाड़ उद्धारक' (Mewar-Saviour) के रूप में स्मरण किया जाता है।

डॉ० बालिकारजन कानूनगो ने कहा है 'सम्पूर्ण राजपूताने में भामाशाह का नाम उतने ही प्रेम और सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है जिस प्रकार महाराणा प्रताप का।'¹

भामाशाह के चरित्र गुणों और कार्यों की विशेषताओं का वर्णन इतिहास का एक अविस्मरणीय पृष्ठ है। भामाशाह की भाँति उनके भाई ताराचंद का मेवाड़ के प्रति योगदान भी प्रशंसनीय रहा है। वह बोर और उत्तम प्रशासक था।

1 "The name of Bhamashah is remembered throughout Rajputana with as tender affection and reverence as that of Maharana Pratap (Studies in Rajput History P 51)

2. भामाशाह का वंश और पिता-भारमल्ल

वंश

भामाशाह 'कावडिया गोत्र का भ्रोसवाल जैन वंश था। इसके पूर्वज दिल्ली के रहने वाले थे, वहा से चलकर ये कभी अलवर में आकर बस गये थे।¹ इनके पूर्वजों का विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता। यह वंश मूल में तोमर वंशी राजपूत था जिसने वान में जैन धर्म अप्नीकार कर लिया था।²

पिता और माता

भामाशाह के पिता का नाम भारमल्ल और माता का नाम कपूर देवी था जो नाथवा गोत्र की थी। इनके दो पुत्र हुए - भामाशाह और ताराचन्द। भामाशाह बड़ा और ताराचन्द छोटा था।

- 1 सेवक जेठमल ने इससे पूर्वजा का वर्णन इस प्रकार दिया है- "भामाशाह का पड़ना चाँगा कावडिया जो राय की गोत्र भ्रोसवाल दिल्ली का रहने वाला था, उसके बाप दादे बादशाह की खफगी के कारण लडाई में मारे गये थे, उस वकत वह बच्चा ही था। इसीलिये उसको कावड में डालकर भेवाड लाये। इससे उसका और उसकी सन्तान का नाम कावडिया हो गया। चाँगा का बेटा ताडा और तीडा का भारमल्ल हुआ। ये लोग बादशाहों के यहा कोठारी और कामदार थे और उदयपुर में दीवान हा गये थे। दीवान होने के पहिले भी इन लोगों के पास बहुत धन था। इसीसे ये शाह कहलाते थे।" (वारशासन, १६ दिसम्बर १९५२, पृ० ७)

डा० जगदीशचन्द्र जैन ने अपने शोधप्रबन्ध 'जैन धर्म साहित्य में भारतीय समाज' में जैन धर्म ग्रन्थों के हवाले से बताया है कि 'सोन के सिक्कों में दीनार धर्मवा केवडिक का उल्लेख है जिसका प्रचार पूर्व देश में था।' सम्भवत 'केवडिक' सिक्के के प्रचुर संग्रह के कारण भारमल्ल क पूर्वज 'कावडिया' या 'कावेडिया' कहलाये।

- 2 अजमेर के शासन पृथ्वीराज चौहान के दिल्ली पर शासन करने से पहले वहा तोमरवंश का राज्य था।

भारमल्ल

भारमल्ल भारी भरद्वा, राखी आन बल प्राण ।

मान बच्यो मेवाड को, राखा जाती शान ॥

(श्री बलव रसिंह महता)

रणथम्भोर की किलेदारी

मेवाड के प्रसिद्ध महाराणा सागा (सग्रामसिंह) १५२३ ई० में भारमल्ल को उसकी प्रशासनिक और सैनिक योग्यता देखकर अन्वय से बुलाकर अथवा जब सागा मेवाड की ओर बढ़ा था तब अन्वय से भारमल्ल को भी साथ लेकर आया और उसे रणथम्भोर का किलेदार नियुक्त किया था। रणथम्भोर उस समय मेवाड के अन्तर्गत था। महाराणा सागा महाराणा जोगी कमवती (करमेनी) से विशेष प्रसन्न था। यह रानी राव नवर का पुत्री थी। इससे सागा के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे — विक्रमादित्य और उदयसिंह। य उस समय बहुत छोटे थे। महाराणा सागा का ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंह था अत रानी को भय था कि रत्नसिंह के गद्दी पर बैठने के बाद उसके दोनों पुत्रों को अच्छी जागीरी नहीं मिलेगी। इसलिये रानी ने अप्रहृष्टपूर्वक निवेदन कर महाराणा सागा से अपने दोनों पुत्रों को लिये रणथम्भोर की जागीरी प्राप्त कर लो चू कि वे दोनों बालक थे जागीरी की सुरक्षा और देखभाल का कार्य महाराणा सागा के आदेश से रानी कमवती के चचेरे भाई हाडा सूरजमल (सूयमल्ल) को सौंपा गया। राव सूरजमल बूढ़ी का शासक और मेवाड का मातहत था। विक्रमादित्य और उदयसिंह अपनी माता कमवती हाडी के साथ रणथम्भोर क दुर्ग में रहने लगे।

भारमल्ल लम्बे समय तक रणथम्भोर का किलेदार रहा। उसकी किलेदारी के समय में रणथम्भोर बाबत दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई।

प्रथम घटना राणा रत्नसिंह के काल (फरवरी १५२८ ई० से १५३१ ई०) में हुई। खानवा के युद्ध के बाद कुछ दिनों से ही महाराणा सग्रामसिंह का देहांत हो गया। उसका ज्येष्ठ पुत्र रत्नसिंह मेवाड की राजगद्दी पर बैठा। बाबर के विरुद्ध युद्ध में जाने से पूर्व ही रानी कमवती को विक्रमादित्य और उदयसिंह सहित रणथम्भोर भेजकर महाराणा सागा स्वयं आगे बढा था। राणा सागा की उपस्थिति में युवराज रत्नसिंह ने इस जागीरी को देने में सहमति अवश्य प्रकट की थी परन्तु मन में वह इससे असंतुष्ट था। रणथम्भोर की जागीरी साठ

1 बीरबिनोद, भाग २, पृ० २५२, डॉ० श्रीभा, राज० का इति० जिल्द, ३, पृ १३०२

लाख की थी। इनका उदा प्रदेश और उसके साथ इस प्रसिद्ध दुग का अपना छोटे भाई का के अधिकार में रहना राणा रत्नसिंह को पसंद नहीं आया। इतनी बड़ी जागीरी के अलग होने से मवाद की शक्ति दुबल हो जाती।

अनएव महाराणा बनने पर रत्नसिंह ने कोठारिया के पूर्विया चौहान पूगमल्ल को राजमाना और दोना भाइयों को चित्तौड़ लाने के लिये भेजा। उस समय महाराणा सांगा द्वारा मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी से लिया हुआ जहाज ताज और कभरपटा भी रानी ने पूणमल्ल को नहीं लौटाया और चित्तौड़ लाने से यह कह कर टाल दिया कि हमारी देखभाल के लिये मूयमल्ल नियुक्त है, अतः हमारा जाना न जाना उसके अधीन है। पूणमल्ल न बूढ़ी जाकर राव मूयमल्ल से भी बातचीत की। उसने टांते हुए कहा कि वह सब बात चित्तौड़ आकर महाराणा से निवेदन करेगा। एमी ही एक घण्टा घटना और घटित हुई। राव मूयमल्ल समझ गया कि महाराणा रत्नसिंह उसके विरुद्ध है गया है। उसी समय उसने बाबर से मिल करने की इच्छा जाहिर की। बाबर ने इसका विवरण अपना 'तुजुम ए बावरी' में दिया है-

“ तारीख 18 मुहर्रम (हि० ९३५, मंगलवार = ३० सितम्बर १५२० ई०) को राणा सांगा ने दूसरे बेटे विश्वनादित्य की तरफ से, जो अपनी माँ पद्मावती¹ के साथ रणथम्भौर के किले में रहता है आदमी आया। ग्वनियर की मदद खाना होने से पूर्व अशोक 2 नाम के एक हिन्दू ने, जो विश्वनादित्य का मित्र आदमी है, आकर ताजदारी और खिदमतगारी जाहिर की, और अपने कृपण क लिए सत्तर लाख की जागीर मागकर ऐसा इकरार किया कि जब वह मृत्युवाला का किला सौंप दे तो उसकी इच्छानुसार परगाने दिये जाय। इस बात का जवाब कर के हमने खसत दी। इस मियाद से कुछ ज्यादा दिन समय नहीं। यह आदमी हिन्दू विश्वनादित्य की मा पद्मावती का नजदीकी मित्र था हुआ है। उसने यह हाल मा बेटा से जाहिर कर दिया है। उहान भी आदम म दन्तियाद के से ही खवाही और खिदमतगारी कबूल कर ली है। एक ताज और जरी का पटका दा। जब सांगा ने सुलतान महमूद को जेर किया तो वह मृत्यु के इच्छा से आया, तब वह ताज और जरी का पटका जो तारीफ के लिये था, उसका पटका छोड़ दिया वही ताज और जरी का पटका विश्वनादित्य के लिये था। उहका बेटा भाई रतनसी (रत्नसिंह) ने जो बाप की जगह राजा बनने का इच्छा कर रहा रखता है ताज और जरी का पटका अपने छोटे भाई के लिये था। उसने यह

- 1 बाबर ने भूल से कमवती के स्थान पर 'पद्मावती' लिखा है।
- 2 यह परमार वंश का और विजोलिया वामों का पूर्वज था।

दिया इन भादमिया के साथ जा आवे हैं, गन और जरी का पटना मुने देना कहलाया है। रणथम्भोर के बन्दन बमाना मांगा था। बयान की बात से उनको टालकर रणथम्भोर के एवज में शमशावा देने का आग्य किया गया। उसा दिन इनके साथ हुए भादमियो की खिलमत पहना कर नी दिन की मियाद से बयाने माने की ससत दी।”

फिर, बाबर ने पुन लिखा है- “ तारिख ५ सफर (२१ अक्टूबर) सामवार के दिन विजयनादित्य क अन्वल एलची और पिछा एलची के साथ पुराने हिन्दुओ में से देवा का बेटा बेहरा होसी भेजा गया, कि यह रणथम्भार सींगने, खिमत गारी कबूल करने और बर्ताब के लिए शत कर। यह हमारा जो भाग्यो गया है, दखकर, सममकर, यकीन करके आवे और वह अपनी बातों पर जमा रहे मीने भी वादा किया, खुदा पूरा करे - उसके बाप का यह कह राणा करके चित्तौड में बठा दूंगा।” 1

मेवाड के महाराणा रत्नसिंह और बूंदी के राव हाडा सूरजमल के बीच मत-मुटाव हो गया था। बूंदी हाडा चौहाना का स्वतंत्र राज्य होने पर भी मेवाड के अधीन था। अतः बूंदी के राव को मेवाड के महाराणा के आदेशों की पालना करनी होती थी और महाराणा के राजदरबार में उपस्थित होकर रस्म अदा करनी होती थी। रणथम्भोर की देखभाल और सुरक्षा का जिम्मा भी अक्सर मेवाड वालों की ओर से बूंदी के राव को सौंपा जाता रहा। सूरजमल बाबर जैसे मेवाड के बड़े शत्रु से मिलकर बूंदी को स्वतंत्र कराना चाहता था। वीरबिनोदकार ने लिखा है कि सूरजमल हाडा राणा रत्नसिंह को इस पायवाही द्वारा भयभीत करना चाहता था। परंतु यह कथन सचपा सत्य नहीं है। बूंदी की स्वतंत्रता के साथ हाडा सूरजमल बाबर की मदद से अपने भानजे विक्रमादित्य को मेवाड का राणा बनाना चाहता था, एव रत्नसिंह को अपदस्थ करना चाहता था। इस बारे में उसने अपनी बहिन रानी कर्मावती के साथ भी सलाह की थी। वह भी चाहती कि उसका बड़ा बेटा विक्रमादित्य मेवाड की गद्दी पर बैठे। अथवा मेवाड से रणथम्भोर स्वतंत्र राज्य बन जाये जिसके लिए मेवाड के महाराणा के साथ सघप होना अनिवार्य था इस सघप में सफलता पाने के लिए बाबर जैसे शक्तिशाली शासक का सहयोग अथेक्षित था।

इसलिए १५२८ ई० से पूर्व ही उसने मुगल बादशाह बाबर के बड़े पुत्र हुमायू

1 वीरबिनोद, भाग २, पृ ५-६ पर उद्धृत।

को राखी भिन्नवायी, यह बात राजस्थान में प्रसिद्ध है ।¹

इस कायवाही से मेवाड़ की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती, घोर बूंदी का राज्य मेवाड़ से स्वतंत्र हो जाता । इस पंडित की सूचना मिलने पर महाराणा रत्न-सिंह को हाडा सूरजमल के विरुद्ध क्रोध ग्राना स्वाभाविक था । हाडा राव मेवाड़ की स्वाधीनता को इस समय धूल में मिलाना चाहता था । हाडा सूरजमल की यह कायवाही कभी सराही नहीं जा सकती ।

एक शिकार के वधाने महाराणा रत्नसिंह राव सूरजमल को बाहर ले गया । वहां मौका खूबकर दोनों ने एक दूसरे पर चार क्रिये तब दोनों की ही वही मृत्यु हो गयी । इसके बाद सरदार ने रणथंभोर से बुलवा कर चितौड़ की गद्दी पर विक्रमादित्य को बिठा लिया । उसने अपने मामा सूरजमल के पुत्र सुर्तान (मुल्तान सिंह) जो उस समय आठ बय की उम्र का था को १५३१ ई० में बूंदी की गद्दी पर बठाया । वह दुष्ट प्रकृति का था श्री उसके व्यवहार से भय हाडा सरदार नाराज होकर अपने ठिकाना में चले गये ।²

इसके बाद विक्रमादित्य ने राणा बनने पर हुमायूँ को पत्र लिखकर उसकी अधीन-ता प्रकट की तथा उससे गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह के विरुद्ध सहायता की माग की थी ।³ मेवाड़ के अनेक सरदार विक्रमादित्य के दुःखवहार व ऐसे ही कामो

1 वीरविनोद भाग २ पृ ४ कर्मावती ने पद्माशाह के माफन हुमायूँ को राखी भेजी (मेवाड़ मुगल सबंध पृ ३६) । पद्माशाह भाट था जो बूंदी की आर से भेजा गया था । इकरसिंह को मेवाड़ की ओर से भेजा गया था जो विक्रमादित्य का भाई लगता था । इस घटना का उल्लेख 'रावल राणारी बात में इस प्रकार लिया है -

" स १५८० राणो सागोजी बकुण्ठ पधार्या । कालपी रे डेरे जेहेर हुमा । प्रमार करमचद रतनसीधजी कीधो । पाट रतनसीधजी ने बैठाया । भाई विक्रमा-दित्य जी ने परा काडया । हाडी करमती राव नारायणजी री बेटी उदेसिधजी रा प्रभ था बूंदी गया छ महेन प्रभ है । चौधे महिने बूंदी म उदयसिध रो जनम हुयो । भाट पदमसाहै जह राखीरो वहानो करन दली हुमाऊ पतीसाह नये मोकरया । हजूर पोहाता राखी कागद नजर कीदो । पातसाह कही सी काचली वहीन मागे जदो तयारी है या कहै भाट ने सीख दीदी । या रतनसीधजी सामलन राव सुरज मल उपर प्रस राखी । (रावल राणारी बात पत्र ८१ अ ब)

2 वीरविनोद, भाग २, पृ ७-८, २६, ६९

3 डा० एस०बी०पी० निगम ने 'शेरशाह सूरी' के प्रकरण में फारसी इतिहास को उद्धृत करत हुए लिखा है इसी बीच राणा प्रताप(?) ने हुमायूँ बादशाह को

के कारण उसके विरुद्ध हो चुके थे। तुजुकेवावरी व उपयुक्त विचार से जाना होता है कि बाबर के पास रानी कर्मावती और हाडा सूरजमल द्वारा भेजे गये अशोक परमार आदि प्रमुख सरदारों को खार गये थे। बाबर ने मवाड को अधीन करने का यह मौका देखा। उसने भी विजयवाटिका को मेवाड़ की गद्दी पर बैठाने का वादा किया था परंतु रणथम्भोर के बजाय बयाने की जागारी देने का वह स्वीकार नहीं की। वह रणथम्भोर की चाबियां पहले प्राप्त करना चाहता था और यह बात उसने दूता के साथ की गई बातचीत में जाहिर भी कर दी थी। बाबर बयाने के बजाय शम्शाद देना चाहता था। परंतु परिस्थितियों को देखते से पता होता है कि न तो बाबर को रणथम्भोर सौंपा जा सका और न विक्रमादित्य को अथवा जागीरी मिली।

भरे विचार से रणथम्भोर मुगलों को न दिये जाने में वरुण कर्णधार भाग्यमत्त ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। भारतन न रानी कर्मावती को इस अन्त-वदनी की कायवाही के दूरगामी परिणामों से अवगत कराया होगा। रानी के पति राणा सागा की नीति में बाबर एक विदेशी आक्रान्ता था और वह उस दश में से निकाल मार भगाना चाहता था। स्वामिभक्त भारतन ने रणथम्भोर किले की चाबियां देने से भी इंकार किया ही। मवाड की स्वाधीनता नष्ट हो जाती। इसीसे बाबर के चाहने पर भी रणथम्भोर उस नहीं सौंपा गया।

वीरविनोद में लिखा है कि -

“भामाशाह के बाप भाग्यमत्त को महाराणा सागा ने रणथम्भोर की किलेदारी दी थी, जो पीछे सूरजमल हाडा बूढ़ोवाले को मिली इस पर भी किसे रणथम्भोर कि ऐतिवारी नौकरी और कुल कारबार भारतन के ही हाथ रहा था।”¹
अतः रणथम्भोर किला मुगलों को सौंपने नहीं देने के पीछे भारतन की भूमिका से नकारा नहीं जा सकता।

दूसरी घटना महाराणा उदयसिंह के काल की है। वीरविनोद में लिखा है कि एक बार शेरशाह सूरी (१५३०-१५४५ई) ने रणथम्भोर पर चढ़ाई की तब भारतन ने कुछ पेशकश (नजराना) देकर चढ़ाई रद्द करा दी।² फारसी इति-हास-ग्रंथों से पता होता है कि १५४२ ई० में ग्वातिघर और मालवा की विजय करने के उपरांत लौटते समय शेरशाह ने रणथम्भोर का घेर लिया। तब वहा

एक प्राथना पत्र लिखा कि मैं दिल्ली के अधीन हूँ तथा मुलतान वहादुर गुजराती भरे साथ घायब कर रहा है वादशाह मेरी स्थिति की ओर ध्यान दें। (पृष्ठ ११६)

1 वीरविनोद भाग 2 पृ २५२

2 वीरविनोद, भाग २ पृ ६९

के हाकिम ने दुग को शेरशाह को सौंप लिया। शेरशाह ने वहाँ अपने बड़े पुत्र अहिलशाह को हाकिम नियुक्त किया। वह वहाँ अघोर समय तक टिक नहीं सका और अपने भाई जलाल खाँ, जो शेरशाहदुर्ग की मृत्यु के बाद गद्दी पर बैठा था, के साथ की लड़ाई में हारकर अघोर ही पटना की ओर भाग गया।¹

इस समय किले की किलदारी पूर्ववत् भारमल्ल के पास ही रही। वह तब तक वहाँ किलेदार बना रहा जब महाराणा उदयसिंह ने राव मुजन हाडा को १५५४ ई० में रणथम्भोर की किलेदारी सौंप दी।² भारमल्ल सदब मेवाड़ के प्रति स्वामिभक्त और दशभक्त बना रहा।

सुतानि (मुस्तानासिंह) के दुष्यबहार के कारण महाराणा उदयसिंह ने पून्नी का पट्टा और रणथम्भोर की किलेदारी मुजन हाडा को १५५४ ई० में सौंप दी। उसे राजतिलक कर सम्बन्धित बूंदी की ओर खाना किया। मुस्तानसिंह बून्नी से भागकर पाटन होता हुआ रामल्ल खींची के पास गया, वह (खींची) महाराणा का बड़ा सरदार था। उसने महाराणा से निवेदन कर सुतानसिंह को बडाद का प्रदेश मिला दिया। बूंदी पर अधिकार करके राव मुजन रणथम्भोर की ओर बढ़ा। इस समय (१५५४ ई०) महाराणा उदयसिंह ने भारमल्ल को उसके परिवार-सहित चित्तौड़ दुग में बुला लिया। भारमल्ल की किलदारी की निरंतरता के कारण ही सूरवण के अघोर होने पर भी रणथम्भोर को मेवाड़ का महाराणा अपने अघोर ही मानता था।

राव मुजन हाडा के पास रणथम्भोर का दुग १५६८ ई० में अकबर की अघोरता स्वीकार करने पय न रहा। बिना संधय किये रणथम्भोर जैसे दुग को सौंप देने की मुगल बादशाह अकबर ने अनुचित माना और मुजन की मूर्ति कुत्ते के रूप में बनाकर आगरे के किले में लगवा दी थी।

१ आमेर शासक भंडार में इस समय रणथम्भोर में गिरी गई कुछ पुस्तकों की पाण्डलिपियाँ उपलब्ध हैं जिनमें यहाँ के शासक का नाम अक्षयखाँ दिया है (देखें- 'राजस्थान के जन भण्डारा की सूची,' भाग ३ पृ० ७३)। यह संभवतः मूर शासक द्वारा नियुक्त यहाँ कोई अधिकारी रहा होगा।

२ रामवल्लभ सोमानी का मत है कि - "Bhatmal was a Kildar of Ranathambhor during the time of Sanga and moved to Chitor on its fall at the hands of Sher Shah Sur" ('Jain Inscriptions of Rajasthan P 233)

एक लाख का पट्टा और सामंत का पद प्राप्त करना -

भारमल्ल ने अपनी दीपकालीन निरक्षरता का अर्थात् अक्षयपरायणता, निष्ठा वफादारी, कूटनीतिज्ञता और प्रशासन कृशता का अच्छा परिचय दिया था। इसी कारण प्रसन्न होकर वि.सं. १६१० (१५५३ ई०) में महाराणा उदयसिंह ने भारमल्ल का एक लाख का पट्टा दकर अपना सामंत बनाया था।¹ मवाड के मामलों में यह एक बटुन बड़ी जागारी थी। बाबर और गुरगाह के मामलों में भारमल्ल ने रणथम्भोर की जिलेदारी के समय जो देगमन्ति और स्वामिभक्ति प्रदर्शन की थी उसी से प्रभावित होकर उस इतनी बड़ी जागीरी का पट्टा दिया गया था। अन्य कारण भी थे। भारमल्ल ने महाराणा उदयसिंह के वात्सल्य में रणथम्भोर में उमकी मुराव दफ्तार की थी, जिसका जिम्मा राणा सागा ने उसे (भारमल्ल) को सौंपा था। इसके अतिरिक्त भारमल्ल स्वयं बटुन अधिक धनी, वीर और योग्य प्रशासक था। मवाड में यह सब तब तक पर्याप्त प्रसिद्धि भी प्राप्त कर चुका था।

साहू भारमल्ल के चित्तौड़-निवासकाल के मुझे दो ताम्रपत्र देखने को मिले जिनमें उसका उल्लेख है। एक-सबत १६१५ माघवती १५ और दूसरा सबत १६२२ माघशीष शुक्ल १५ का है।²

एक पुरानी बहरी में इस तथ्य का भी उल्लेख मिलता है कि ग्रामिण निजामी ब्राह्मण गौतमा के पास रुपये उधार लेने के लिए महाराणा उदयसिंह ने जिन सागा को भेजा था उनमें भारमल्ल प्रमुख था।³

घम प्रेम -

जसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, भारमल्ल छोसवाल जन था। अपने जीवन

1 वीरविनाद, भाग २ पृ. ६८ तथा पृ. २५२। पृ. ६८ पर कनिराज श्यामल दास ने भूलसे लिख दिया है कि- 'वि.सं. १६१० (१५५३ ई०) में महाराणा उदयसिंह ने भामाशाह के बाप भारमल्ल को अलवर से बुलाकर एक लाख का पट्टा बट्टा था।' भारमल्ल को महाराणा उदयसिंह ने नहीं, अपितु उसके पिता महाराणा सप्रामसिंह ने अलवर से बुलवाकर रणथम्भोर में जिलेदार नियुक्त किया था, 'वीरविनाद' भाग २, पृ. २५० पर भी यह बात लिखी गई है। एक ही ग्रंथ में भूल से ये दो विरोधाभासी वचन लिख दिये हैं। यहाँ केवल यही अभिप्रेत है कि महाराणा उदयसिंह ने सम्मानपूर्वक भारमल्ल को एक लाख का पट्टा दिया था।

2 ताम्रपत्रों की प्रतिलिपियाँ परिशिष्ट में दिये।

3 पुराहित संग्रह बही संख्या ५ वि.सं. १७६४-८१, पृष्ठ १६४,

काज क प्राग्भिव भाग म बहु तपागच्छ वा अनुयायी रना, परन्तु दाज म
 धनागर मूरी के उपना से प्रमाति होर "परम" और उनके साथ धनर
 नाम नागोरी तुकागच्छ के अनुयायी दाज रद । इग कथन वा प्रमाण
 नागोरी तुकागच्छ की एक पट्टावला म मिलता है । इम पट्टावा मे
 "म तद्य वा भी प्रमाण मिलता है कि स० १६१६ म चितौड पर भारमन
 निवास करता था । साथ ही, यह भी जान होता है कि राजतित्त बायो म व्य-
 स्त होन पर भी भारमल व्यक्तिगत जीवन म धमाधिमूव रहा ।

धनी -

तुकागच्छ पट्टावली में बताया है कि भारमल अठारह बरों के वा सभति बला
 था । इमस जान होता है कि वह अपने समय वा एक बहुत बदा धनी व्यक्ति था ।
 अन्तिम दिन -

भारमल न अन्तिम दिन पुन धाराम से व्योक्त विषे । यह मनाड के बृज
 उच्चपद पर प्रामीन था । उमकी हजली चितौड दुग पर मेगवान (तामयाने)
 क सामने कवायद के मदान क पश्चिमी किनार पर था जिसकी महाराणा
 सज्जनसिंह न कवायद वा मदान तयार करात समय मुडवा दिया था । यह
 हजली बाद म भामाशाह की हवली ' के नाम म प्रसिद्ध रही । चितौडगड की
 तलहटी म पाउन पात क पान भारमल वा हस्तिशाला थी । वह भी बाद म
 ' भामाशाह की हस्तिशाला ' कहलाई ।

इस प्रकार महाराणा उदयसिंह के पान म भारमल को उच्च प्रतिष्ठा और
 स्थान प्राप्त हा चुका था । " महाराणा क परम विश्वमयीय व्यक्तिया में से
 था । माघशीप स १६२४ (अक्टूबर १७६७ '०) मे चितौडगड पर मुगल बाग्याह
 अक्टूबर वा आक्रमण हुआ । परा डालन मे पुन अपने सरदारों के साथ ही और
 सनाह पर महाराणा उदयसिंह परिवार सहित चितौड स कुम्भलगढ़ चला गया
 था । सब सामन्तों ने अपने पुत्रा वा ही महाराणा क साथ भेज दिया था । भार-
 मल क दोती पुत्र भा इम समय महाराणा क साथ गवाड के पहाड़ी क्षेत्र में चले
 गये थे । स्वयं भारमल चितौड दुग की रक्षा करते हुए अक्टूबर की रना क साथ
 लड़ता हुआ काम आया था ।



3. भामाशाह

सवस्व स्वस्नेहनसा पूरित कर पातल को ।
भामे प्रज्वलित कियो भारत के प्रदीप को ॥

(श्री बलवन्तसिंह महता)

जन्म और प्रारम्भिक जीवन

भामाशाह के वंश परिवार और गुरु का परिचय उनके समकालीन रचित नितन दो काव्या में मिलता है-

1. 'विदुर' कविद्वारा 'भामावादनी' की रचना (रचनाकाल स १६४६) संभवतः भामाशाह के आश्रय में हुई थी। इसके प्रारम्भ में वंश परिचय' इस प्रकार दिया है -

' नमल गच्छ नागोरि नानि देपाल जिसा गुर ।
दया धम्म दाखिये , देव चउवोस तीयकर ॥
पिरियावटि पृथिराज साह भारमल्ल सुणिउजे ।
जमवत बाधव जोड , करण कलीयण कहिउजेइ ॥
ताराचद लखमण राम जिम वित घोभण जोडी थयो ।
कुलतिलक भ्रमण कावेडिया, भामो उजवालण भयो ॥२॥
मूल पद भारमल्ल साख कावडिया मोहइ ।
पुत्र-पौत्र परिवार, मउरि मभण दति मोहइ ॥
लखमी नित लखगुणी फालत्या सुइज फूल फल ।
विस्तरियो घणउ चिहु खड विचइ, जुगि आलखणि एहान ॥
कलिकाल इयइ पीथल कुलइ, भामउ कलपत्तइ भवण ॥३॥

इससे ज्ञात होता है कि भामाशाह का कुल कावेडिया कहलाता था, इस कुल के मूल पुरुष का नाम 'पृथ्वीराज' था। इस कुल में उत्पन्न भारमल्ल कलि युग में करण के समान दानी था। इसका छोटा भाई जमवत था। भारमल्ल के दो पुत्र हुए भामाशाह और ताराचद। ये दोनों भाई राम लक्ष्मण की जोड़ी के समान थे। भारमल्ल वृक्ष का मूल था और पुत्र पौत्रों के रूप में उसका परिवार शाखाएँ थीं। नागपुरीय (सुवागच्छ) के देपाल (देवागर) उनके गुरु थे। इस वंश में भामाशाह कल्पतरु के समान हुआ।

2 कवि हेमरतन कृत 'गोरा बाल पद्मिनी क्या चौपाई' की रचना (रचना-काल स 1645) सादडी मे ताराचन्द क आश्रय मे हुई थी । इसकी प्रशस्ति मे लिखा है-

“सवत सोलहसई परणाल
सावण सुनि पचम सुविशाल ।
पुहवी पीठि धनु परगडो,
सबलपुरी सोहद सादडी ॥
प्रथवो प्रगट राण प्रताप,
प्रतपइ दिन निन अधिन प्रताप ।
उस मत्री सन्बुद्धि निघान,
कावेडिया बुलतिलवनिघान ॥
सामि घरमि घुरि भामु साह
वदरी वस विधुसण राह ।
तस लघुभाई ताराचन्द,
अवनि जाणि अवरियो इ द ॥
घूप जिमि अविचल पाल घरा,
सनु सह कीधा पाघरा ।
तस आदेस लहि, सुभ भाई
सभा सहित पायो सुपसाई ॥
वात रची ए बादिल तणी,
सामि घरमि ए मोहामणि ।’

भामाशाह का भाई ताराचन्द उससे छोटा था ।

भामाशाह का जन्म आषाढ शुक्ला १०, सवत् १६०४ (२८ जून १५४७ ई) को हुआ था । इस प्रकार भामाशाह राण प्रताप (जन्म ज्येष्ठ सुदि ३, स० १५९७-९ मई १५४० ई०) से सात वर्ष छोटा था । इसका बाल्यकाल चित्तौड़-गढ़ में बनीत हुआ । यही उसने छुडसत्रारी करना, अस्त्र चलाना आदि का गान प्राप्त किया । भामाशाह के प्रारम्भिक जीवन का विशेष वृत्तांत प्राप्त नहीं होता ।

वहा जाता है कि भामाशाह चित्तौड़ दुर्ग के नीचे पाहनपोल के पास बनी हुई अपनी हस्तिशाला में निवास करता था । महाराणा उदयसिंह का ज्येष्ठ पुत्र प्रताप भी दुर्ग की तलहटी में रहता था । महाराणा उदयसिंह का रानी भटियानी पर अधिक प्रेम था । छोटा होने पर भी इस रानी के पुत्र जगमाल को युवराज

वनाया गया था। प्रताप जानता था कि उस राजगद्दी नहीं दी जायगी। उस समय प्रताप को निर्वाह हेतु प्रतिदिन दुग्ध से उसके पास पेटिया भजा जाता था। उस पेटिये से वह दस-पन्ध्रिया की रसोई बनवाकर प्रतिदिन दस राजपूतों के साथ एक पक्ति में बैठकर भोजन करता था जो बाद में मेवाड़ की एक रीति बन गई। इसीकाल में भामाशाह, जो दुग्ध की तलहटी में रहता था प्रताप के निकट सम्पर्क में रहा। उसकी मित्रता दिन दिन गान्धारी होती गई। भारतमल्ल की मृत्यु के बाद महाराणा उदयसिंह ने उसके एक नाथ के पत्रों का हकदार भामाशाह को वनाया था।

महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद जब प्रताप को गद्दी पर बैठाने का प्रश्न उपस्थित हुआ तब भामाशाह जो एक बड़े जागीरी का सामंत था न प्रताप का पक्ष लिया और उस मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठाने में योगदान किया। प्रताप के साथ अपनी मित्रता को उसने आज्ञावत निभाया और स्वामिभक्त प्रमाणित हुआ।

विवाह

लुकाकच्छ की पट्टावली से विदित होता है कि भामाशाह का विवाह भोमा (भामा) नाहटा की पुत्री के साथ हुआ था। पट्टावली में यह भी बताया है कि भोमा के पास दक्षिणावत शख था जिसके प्रभाव में उसके घर में अठारह करोड़ का धनराशि उत्पन्न हुआ गयी थी। शखदय ने भामा को स्वप्न में दर्शन कर कहा कि तुम्हारे घर में पुत्री का जन्म होगा वह अपने पुण्य के प्रभाव में भारतमल्ल कावेडिया के घर में बसाही जायगी मैं भी उसके साथ उसके घर जाऊंगा। तब अपनी भावी पुत्री का विवाह सम्बंध भारतमल्ल कावेडिया के पुत्र भामाशाह के साथ करने के निमित्त श्रोत्र (नारियन) के स्थान पर उस दक्षिणावत शख को कीमती वस्त्र से ढक कर भामा नाहटा ने भारतमल्ल का दे दिया। उस सम्मानपूर्वक घर में ले जाकर भारतमल्ल ने चान की बीजा पर रखकर उसकी पूजा की जिसमें उसने घर में भी अठारह करोड़ की धनराशि उत्पन्न की गई। कहने का तात्पर्य यह कि भारतमल्ल का भामाशाह के विवाह के उपलक्ष्य में विपुल धनराशि प्राप्त हुई थी अथवा भामाशाह के विवाह के बाद भारतमल्ल के घर में लक्ष्मी का वास हुआ गया।

हल्दीघाटी युद्ध

मेवाड़ के इतिहास में भामाशाह का नाम सबसे प्रथम हल्दीघाटी युद्ध के प्रसंग में सामने आता है।

१५७२ ई० में महाराणा उदयसिंह की मृत्यु के बाद प्रताप मेवाड़ की राजगद्दी पर बैठा। उस अपने जीवन के अन्तिम काल (१५९७ ई०) तक मुगलों के साथ घषप करना पड़ा। मुगल विद्वानों के मत प्रताप को विदेशी शासनसत्ता

कतई पसन्द न थी। महाराणा प्रताप की स्वाधीनतावादी नीति और मुगल बादशाह अकबर की विस्तारवादी साम्राज्यवादी नीति के बीच सघर्ष अवश्यम्भावी था। अकबर चाहता था कि राजस्थान के अन्य राजपूत राजाओं की तरह राणा प्रताप भी बिना प्रतिरोध किये उसकी प्रभुता मान ले। एतदर्थ उसने साम-दाम-दण्ड भेद की नीति का अनुसरण किया।¹

प्रारम्भ में चार वर्ष तक अकबर ने अपने प्रमुख सरदारों और मंत्रियों को प्रताप का समर्थन बुझाने के लिए मकाड़ भेजा। इस क्रम में जलालखाना कोरची, मानसिंह, राजा भगवतदास राजा टोडरमलन के नेतृत्व में चार दूत-मण्डल भेजे गये।² पर तु उनके द्वारा किया गया प्रलोभन और भविष्य में सुख समृद्धि की आशा प्रताप को आकर्षित नहीं कर सकी। राजा मानसिंह के साथ भेंट वार्ता के अवसर पर प्रताप ने उस उल्हास की पाल पर प्रीतिभोज दिया। इस आयोजन की व्यवस्था का भार भामाशाह को सौंपा गया होगा। भाजन के समय स्वयं महाराणा प्रताप उपस्थित नहीं हुआ और युवराज ममरसिंह को भेज दिया। युवराज मानसिंह की भुआ का विवाह अकबर जैसे विदेशी म्लच्छ के साथ हुआ था इस प्रताप और उसके सहयोगी बिल्कुल अच्छा नहीं मानते थे। अतः प्रताप जैसे कुलाभिमानी व्यक्ति के लिए यह शोभनीय नहीं था कि वह मानसिंह के साथ एक पक्ष में बैठकर भोजन करें। प्रताप ने पेट दद का बहाना बनाकर भाजन में सम्मिलित होने के लिए आन सकार कर लिया। साथ ही भोजन समाप्त के बाद उस स्थान पर खड़ाकर गगजन छिन्नवाया उसकी शुद्धि करवाई वाम घाते पथों को तालाब में विकारा दिया - इन वार्ता की खबर मानसिंह के पास पहुँचे बिना नहीं रह सकी। इससे मानसिंह ने अपने को अमानित अनुभव किया और वह क्रुद्ध होकर अकबर के पास पहुँचा। मुगल के अतिम

1 मुम्ता द्वारा 'हिन्दुसुरभाग' की उपाधि धारण की गई थी, जिसे गुजरात मालवा और दिल्ली के बादशाहों ने भी स्थावर किया था। 'हिन्दुसुरभाग' का ही रूप बाद में 'हिन्दुशासक' हो गया। इस प्रकार सूरज' के समस्त हिन्दुओं (भारतीयों) की राजभक्ति का प्रतीक मेवाड़ बना आ रहा था। एक ही दश में दो संप्रभुशासन नहीं हैं। संभव है। जब तक मेवाड़ के शासक द्वारा मुगल बादशाह को शासक नहीं माना जाता, तब तक वह भारतवर्षका संप्रभुशासन नहीं बन सकता था। इसी कारण मुगल धर्म में चले हुए अधिकांश राजपूत और हिन्दु शासकों की आंतरिक सहानुभूति मेवाड़ के शासक महाराणा प्रताप के प्रति थी। मेवाड़ का मुगलों के साथ सघर्ष हान में यहाँ मूल आधार था।

2 डॉ० आनोर्वादीलाल श्रीवास्तव 'अकबर महारू' भाग १, पृ १०६-१०७

हल्दीघाटी का युद्ध मेवाड़ के इतिहासों में 'खमनौर का युद्ध' नाम से मिथ्य रखा है। इस युद्ध में तब रणराज और उसके तीन पुत्र (शालिवाहन मानसिंह या भवानीसिंह और प्रतापसिंह), भाला बीदा, भाला मानसिंह रावन नेतसी (सारगदेवोत), राठोड़ रामदास (जयमल का पुत्र) डोडिया भीमसिंह, राठोड़ शकरदास आदि कई प्रमुख सरदार मारे गये।

हल्दीघाटी युद्ध में से प्रताप के निकलकर चल जान को लेकर मुगल पक्ष ने इसे अपनी विजय बताया, पर तु वास्तविक विजय थी प्रताप को प्राप्त हुई। वह न तो पकड़ा जा सका और न मुगल मेवाड़ पर अपना स्थायी आधिपत्य जमा सके। यह युद्ध राणा प्रताप द्वारा चलायी गई गुरिल्ला युद्ध की रणनीति का एक अंग था। अतः इस युद्ध से भागने या वहाँ पर हार या जीत होने का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। युद्ध का प्रभाव, व्यापक और दीर्घकालीन संघर्ष की शुरुआत को देखते हुए इसमें प्रताप की सफलता मानी जानी चाहिए।¹

*exalted Imperialists in the confusion the hope of Mewar himself was all but surrounded by the enemy and about to be cut off But it was not to be so long as there remained a single Rajput true to his chieftan Realizing the crisis Bida Zala promptly snatched away royal umbrella from above the head of Rana and rushed forward with it shouting that he himself was Maharana Pratap Defying the imperialists to face him the ruse succeeded

The Mughal captains each eager to win the owner of bringing the Maharana's captured crowded round Bida

The pressure on Pratapsingh was realised and his faithful adherents seizing his bridle turned his horse head and laid their wounded chieftan out of safety through the pass in the Rear

Bida made death he coveted With his fall struggle ended The remained Mewar army dissolved and fled through the pass

(' Military History of India ')

१ मेजर अल्फ्रेड वेविङ ने युद्ध-परिणाम की समीक्षा करते हुए उचित ही लिखा है

' The Mughals won the victory but achieved nothing and *

कनकटाड ने हल्दीघाटी की मेवाड की 'धर्मोपीली' कहकर इस युद्ध में सम्मान को विश्वविख्यात किया।¹

हल्दीघाटी के युद्ध की 'जनयुद्ध' की संज्ञा दी जाती है यह उचित ही है। इस युद्ध में न केवल शासकवर्ग ने विदेशी शासकता के विरुद्ध हृदयार उठाए अपितु तत्कालीन मेवाड के हर वर्ग के जन समुदाय ने इसमें सक्रिय सहयोग देकर देश प्रेम और राष्ट्रमैत्री का परिचय दिया था। 'सी से हमारे 'स्वाधीनता-
 L आन्दोलन का यह प्रतीक और आदर्श बन गया। इस युद्ध में राजपूत जाति के लगभग सब वर्गों, जैसे चूण्डावत मिसोदिये, भाला, राठीड तवर(तोमर), डोडिय, चौहान, पट्टिहार (पतिहार) ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त बायस्थ, ब्राह्मण, वश्य चारण वारहट भी इसमें सम्मिलित थे। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह था कि मुगलों से लड़ने के लिए मेवाड के छत्र के नीचे हर्कमखा मूर अपनी पठानी सेना के साथ शामिल हुआ था जिसे राणा प्रताप ने सम्मानपूर्वक अपनी सम्पूर्ण सेना के हरावल का नतुब्ब सौंपा था। पठानों का मूल प्रदश प्रारम्भ से भारत ही का अंग रहा है। अतः पठान अपने को इसी देश का निवासी मानते थे। यह इतिहासकारों का महान् भूल रही है कि उन्होंने पठानों को विदेशी मान लिया। पठान भी अत्यन्त स्वदेशिया की भाँति मुगलों को विदेशी मानते थे। इसी कारण मेवाड के अधीन मुगलों के विरुद्ध लड़ने में पठानों ने सक्रिय नहीं किया। राणा प्रताप की राष्ट्रीय जनवादी नीति के फलस्वरूप ही यह संभव हो सका। इससे भी बल्कर एक और तथ्य उभरकर सामने आता है वह यह कि हल्दीघाटी के युद्ध में मेरपुर का राणा प्रताप अपनी समस्त भील सेना के साथ इसमें उपस्थित हुआ था। यह इतिहास में प्रथम अवसर था जब भीलो ने राजपूत सना का सहयोग किया था। भीलो के तीरो की बौद्धार न मानसिंह और उनके सेनानायकों को युद्ध की समाप्ति के उपरांत भी भागे बचने से रोका और ब्रह्म बापिस लौटते हुए राणा व उसकी सेना का पीछा करने का सहाय नहीं कर सका। इस प्रकार हल्दीघाटी का युद्ध सर्वतोभावेन जनयुद्ध कहा जाने योग्य है।

* long remembered the battle for many years afterwards in Delhi. Horryheaded Mughal warriors would passed the nights relating the youthful soldiers the tales of Haldighatt and amazing deeds of Maharana Pratap " (Major Alfred David Indian Art of war I 32)

1 Haldighatt is the Thermopylae of Mewar the field of Dewair her Merathan ' (Tod, Annals', Part I, P 278)

परिस्थितियाँ को देखते हुए स्पष्ट होता है कि उस समय राणा के पास उसके विश्वस्त अनुयायी भामाशाह और ताराचन्द को छात्ररूप में कोई नहीं था। स्वतंत्र होने उसके घोड़े की लगाम पकड़कर घाटा का मुह घुमा दिया और अपने घायल सरदार का अपनी भेगा के पीछे के भाग से घाटी के उम पार सुरक्षा पूर्वक ले गये, क्योंकि मुगलों के बायें पक्ष को विच्छिन्न करने के बाद उसके सेनापति का के सेना सहित भाग जाने पर राणा की सेना के दाहिने पक्ष के राजा रामशाह तबर और उसके साथ भामाशाह और ताराचन्द भी अपने स्थान में रह गये क्योंकि वहाँ लड़ने के लिए कोई बचा नहीं था। इसके बाद के लगातार प्रताप के सामने और इन गिरे हुए बने रहे। इसका वर्णन जदुनाथ सरकार के शताम -

‘ जब सामान्य रूप से युद्ध होने लगा तब चाहिने बाजू में राजा रामशाह तबर मुगल सेना के बायें बाजू के नायक के भाग जाने के बाद अपने स्थान में रह गया। तबर लगातार राणा प्रताप के सामने ही बना रहा और इस प्रकार राणा का उस समय तक रक्षा करता रहा जब तक उसे (तबर को) जगन्नाथ कछवाणा ने मौत के घाट नहीं उतार दिया। (मिनिटरो हिमाली आफ इण्डिया -मून का हिमाली अनुवाद) रामशाह तबर मारा जा चुका था। अतः भामाशाह और ताराचन्द ने ही घायल राणा प्रताप को युद्ध मैदान से निकालकर सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया था।

हल्दीघाटी युद्ध क्षेत्र से महाराणा प्रताप के लौटने की घटना के साथ एक नवान कथानक जाना जाता है। रणछोत्र भट्ट प्रणीत राजप्रशस्ति महाकाव्य में लिखा है - प्रताप को लौटता हुआ देखकर मानसिंह ने तत्काल दो मुगलों को उसके पीछे भेजा। मानसिंह की भाना तबर शक्तिसिंह भी उसके पीछे चल पड़ा। मानसिंह के उन दो मुगलों ने राणा प्रताप से युद्ध किया। तब प्रताप और शक्तिसिंह ने इन दोनों को मार गिराया। शक्तिसिंह ने प्रताप को आवाज दी कि ओ मोल घाटे के सबार, पीछे देखो। ‘ तब राणा ने कहा-‘महीन्द्र शक्तिमिह हितपी है। इसी कारण शक्तिसिंह का वश राणा का प्रिय बना। ‘ (रा० प्र० सग ४, श्लो २६-३०)। इस लेखक ने उक्त घटना को स्वप्रणात अमरकाव्य (सग १७ श्लोक ३१-३४) में भी किया है। तब से ही यह कथानक प्रचलित हुआ जान पड़ता है। टाड ने भी इस कथानक को विस्तार से लिखा है। उमन यह भी लिखा है कि- शक्ता अपने व्यक्तिगत द्वेष के कारण प्रताप को छोड़कर अरवर की सेवा में जा रहा था और इस युद्ध में भी वह उमी की तरफ से लड़ा था, परन्तु दो सबल मुगल सवारों को अपने घायल भाई का पीछा करते देखकर

उमर दिल में भातृ प्रेम उमड़ उठा, जिसमें वह उन (मुगल) के पीछे हो गया और उन्हें अपने जाल में मार डाला। इस समय तोना भाइ एक दूसरे का गले लगाकर मिले। वहीं घायल चेटक मर गया जहाँ उमरका चबूतरा बनाया गया फिर शकना ने उस अपना घोटा दिया। (एनल्स भाग, १ पृ २८०)

वस्तुतः यह क्या इतिहास मिथ नहीं है। शक्तिमिह (या शकना) उदयसिंह के चौबीस पुत्रों में सौमर नम्बर पर था।^१ प्रताप के साथ शक्तिमिह की निकार सबधी लड़ाई का प्रणन भी मनगढ़त है।^२ रणछोडमट्ट ने इस युद्ध के १०० वर्ष बाद अपने ग्रंथ लिखे थे, उस ग्रंथराल में कई अनिश्चित बातें प्रसिद्ध हा चुकी थी। किसी भी फारसी तवारीख में शकना का इस युद्ध के समय बादशाही सेना में होना नहीं लिखा है। शकना अपने पिता उदयसिंह से नाराज होकर अम्बर के पास चला गया था। बाबू रामनारायण दूगड लिखते हैं- कहते हैं कि ज्योतिषिया ने शक्तिमिह के लक्षण बताकर महाराणा (उदयसिंह) के मन में सन्देह डाल दिया था, इसमें उन्होंने शक्तिमिह को भ्रमण करने के प्रयत्न किये फिर वह दृष्ट कर बादशाही चाकरी में चला गया था।^३

अबुलफजल 'अकबरनामा' में लिखता है- मुकाम धौलपुर में राणा उदयसिंह का बेटा शक्तिमिह बादशाह के साथ था। बादशाह ने उससे पूछा कि राणा ने अब तक निश्चय कबूल नहीं की है इसलिए अगर उस पर चण्टी की जाय तो तू क्या मन्द करेगा? शक्तिमिह ने बादशाह के सवाल पर कुछ जवाब नहीं दिया और दूसरे हाथिन रुखसत हासिल किये बिना चित्तौड़ की तरफ दूध दिया। उमर सोचा कि शायद मेरे कारण लोग यह शक करेग कि यही बादशाह का चित्तौड़ पर चण्टा गया है। उसकी एसी हरकत से बादशाह बहुत नाराज हुआ और हाडोती फटह करता शिवपुर को लता दूध चित्तौड़ की तरफ चला।^४

कुछ शक्तिमिह धौलपुर से मीरा चित्तौड़ पहुँचा और अकबर के चित्तौड़ पर आक्रमण करने के लिए निश्चय की सूचना महाराणा उदयसिंह को दी तब सब सरदार बुलाये गये। उनकी सलाह पर राठीड जयमल और पता सीसोल्या को दुा की रक्षा का भार सौंपकर महाराणा उदयसिंह अपने परिवार और अन्य

१ टॉड 'एनल्स भाग १ पृ २८२

२ यही पृ २८२-२८६

३ बाबू रामनारायण, राजस्थान रत्नाकर, प्रथम भाग उरण, पृ १११

४ अकबरनामा का एच० अवरिज हत अग्रणी अनुवाक जि० २, पृ १८० ८०
बोरविनी, भाग २, पृ ७३ ७६

सरदारों व खजाने महिा मेवाड के गहाडों में बना गया तथा वहां आकर बाहर से उसने सभ्य की शुद्धता की।

शक्तिमिह के चितौड़ पहुँचने पर दुग के द्वार नहीं खोले गये। मुगलों के साथ सम्पर्क में रहने के कारण शक्तिमिह पर विश्वास करना संभव नहीं था इस प्रकार उसे दुग के अंदर नहीं लिया गया।

शक्तिमिह ने अकबर के आक्रमण का समाचार भीतर मित्रवा दिया।¹ शक्तिमिह के देशप्रभ के इस उत्थाहरण ने अकबर ही बाद में महाराणा प्रताप को उसके प्रति आकर्षित किया होगा और इसलिए संभवतः उसको अपने यहां बुला लिया होगा। बाबू रामनारायण डूंगड ने लिखा है- 'शक्तिमिह भीठर के खानदान का मूल पुष्प हुआ, शक्तिमिह के पैदा होने पर ज्योतिषिया ने उसे मेवाड की खराबी करन वाला बतलाया था, इसलिये महाराणा ने उसे मार डालने की आज्ञा दी, परंतु सलुम्बर के रावन सावलदास ने उस के प्राण बचाये, महाराणा से अज्ञ की कि मेरे पुत्र नहीं इसलिये यह बालक मुझको बरखा दीजिये। महाराणा उदयसिंह का देहात होने पर महाराणा प्रतापसिंह ने अपने भाई शक्तिमिह को, जा बादशाह अकबर की चाकरी में चला गया था पीछे अपने पास बुला लिया परंतु थोड़े ही अर्से में दोनों भाईयो का मेल टूट गया और शक्तिमिह फिर मेवाड से बाहर किया गया, तब वह पीछा बादशाही सेवा में जा रहा।²

इसके बाद शक्तिमिह मुगल दरबार में बना रहा। अकबर ने उसे मनसब दिया था। 'अकबरनामा' में लिखा है- कि अकबर ने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष (१६०५ ई०) में अकबर सरदारों के मनसब में वृद्धि की थी, इनमें शक्तिमिह का मनसब भी बनाकर १६०० जात और ३०० सवार कर दिया गया था।³ शक्तिमिह को मुगल बादशाह की ओर से भसरोडगढ़ का जागारी प्रदान की गई थी। वही उसकी मृत्यु हुई। वान में सन् १६१५ ई में मेवाड मुगल सधि होने पर भसरोडगढ़ को मेवाड में सम्मिलित किया गया।⁴

१ डा० देवीलाल पात्नीवाल 'प्राचीन डिगल काय में महाराणा प्रताप' भूमिका पृ ६

२ बाबू रामनारायण डूंगड राजस्थान रत्नाकर (मेवाड का इतिहास) पृ २१९

३ अकबरनामा जिल्द ३, पृ ८३९ डा आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, अकबर महान्, भाग १ पृ ४७३

४ बीरविनीत, भाग २ पृ २४६

अतएव मानसिंह की सेना में शक्तिसिंह का होना और घायल प्रताप के युद्ध में निकलने पर दो मुगलानों का मार कर उसकी रक्षा करना और मृत चेतक के स्थान पर अपना घोड़ा देकर प्रताप की मदद करना आदि बातें मनगढ़ंत हैं। इनका कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। डॉ० गौरीशंकर हीराचंद घोषा,¹ डॉ० रघुवीरसिंह² डॉ० गोपीनाथ शर्मा³ आदि प्रसिद्ध इतिहासकार भी इस कथानक का अतिहासिक मानते हैं।

इस प्रकार यह तथ्य स्वीकार करने में आशंका शय नहीं रहनी की राणा प्रताप को घायल अवस्था में युद्ध क्षेत्र से बाहर ले जाने और उसे सुरक्षित स्थान तक पहुँचाने में भामाशाह और ताराचंद ने ही बुद्धिमत्ता पूर्ण दूरदर्शिता का परिचय दिया। प्रताप के लौटने के बाद उसका सैनिक भी लौट आये। प्रताप के सब बड़े सरदार तब तक मारे जा चुके थे। ये दोनों भाई ही बच सके।

इस युद्ध में इन दोनों भाईयों ने बड़ी वीरता प्रदर्शित की और राणा प्रताप के उत्तम महाराणा प्रमाणित हुए। युद्ध के प्रथम दौर के समय राणा की सेना को जो विजय प्राप्त हुई उसका श्रेय राजा रामसिंह तबरे के माण भामाशाह और ताराचंद को मिलता है। इसका उल्लेख फारसी इतिहासकार अल बदायूनी और अबुलफजल ने भी किया है।³

‘प्रधान का पद प्राप्त होना-

हुलीघाटी युद्ध में महाराणा प्रताप के अनेक विश्वमनीय वीर सरदार मारे जा चुके थे। जो बचे थे वे बहुत थोड़े थे। भामाशाह जैसे अग्रगण्य और योग्य व्यक्ति को पहचान कर अवस्था और सैनिक क्षमता की दृष्टिसे उपयोगी मानकर महाराणा प्रताप ने भामाशाह को अपना ‘प्रधान’ बनाया तथा रामाशाह महासहायी को इस पद से हटा दिया। इस संबंध में एक दाहा प्रसिद्ध है-

“भामो परधानो वर रामो कीधो र्ह।

धरचो बाहर करणनू मिनियो आय मरह।।’

१ डॉ० घोषा, ‘राज० का इति०’ जिल्द २, पृ ७५१-५२ पर पाद - टिप्पणी।

२ डॉ० रघुवीरसिंह ‘राणा प्रताप पृ २९ पर पाद टिप्पणी।

३ डॉ० गोपीनाथ शर्मा, ‘राजस्थान का इतिहास’ भाग १, पृ २८९

४ अबुलफजल - “हमारी जो सेना पहले हमल में ही भाग निकली थी नहीं (बनास) को पार कर ५-६ बीस तक भागती ही रही (मुल्तखबउत तवारीख)। अबुलफजल - “मरहरी तौर उ देखने वालों को तब राणा को जीत होनी स्थिर द रही थी।” (अकबरनामा)।

मन्त्रालय भाग्य-प्रधान गिरी करता है। भाग्य का दूर किया गया। देश की नरपदायक करने के लिए यह मन्त्र आकर मिल गया।

महाराणा ने भामाशाह को यहसमान देवुर समझोचित सूझबूझ का परिचय दिया। मवाड की अस्थिर और नष्ट हाती हुई राजनीतिक और सामाजिक दशा को उबारने के लिए भामाशाह जैसे तैति निपुण, उत्तार, त्यागी, गिलोभी और पूण विश्वमनीय ब्यक्ति के इस मन्त्र और प्रशासनिक सर्वोच्च पद पर नियुक्त किया जाना अत्यंत आवश्यक था।

भामाशाह ने हल्दीघाटी युद्ध में अपनी सैनिक कुशलता का परिचय दिया था परन्तु प्रधान के पद पर रहते हुए उसने अनक वार अपनी प्रशासनिक सक्ति और प्रबोधन कुशलता को प्रदर्शित किया। यहाँ पर वह प्रच्छा भवन निर्माता भासिद्ध हुआ।

हल्दीघाटी युद्ध १८ जून १५७६- जवाठ शुक्र २ स १ ०० को लड़ा गया। इसने ठीक बाद भामाशाह को प्रधान बना दिया गया क्योंकि भाद्रपद सुदि ५ स १ २३ (अगस्त १५७६) के सथाणा गांव के ताम्रपत्र में, जो कुम्भलगढ में महाराणा प्रताप के आदेश से दिया गया था भामाशाह का उल्लेख है जिसने इसे जागी करवाया था। अत स्पष्ट है कि अगस्त १५७६ तक भामाशाह 'प्रधान' नियुक्त किया जा चुका था। वैसे भामाशाह को महाराणा प्रताप के राजवाराहण के बाल स ही कोपाधिकारी और आधिक प्रबोध की जिम्मेदारी सौंप ली गई थी।

जब भामाशाह का प्रधान का पद सौंपा गया तबभग उसी समय उसका भाई ताराचन्द को गोडवाड के विस्तृत भूभाग का स्वतंत्र गवर्नर नियुक्त किया गया। प्रजापालन एवं प्रबोध

मुगल बादशाह अकबर ने मवाड पर अधिकार करने के लिए मार्च 1578 ई. में शाहवाल्खा को कई अमीरों और बड़ी सना के साथ भेजा। उस समय महाराणा कुम्भलगढ में रहता था। अत शाहवाल्खा ने मारी शक्ति कुम्भलगढ को धरने

१ डा रघुवीरसिंह का मत है कि- मवाड राज्य के बाप तथा आधिक मामला का कायभार प्रताप के राजवाराहण के समय स ही भामाशाह के हाथ में रहा। अन्य सारे शासकीय मामले प्रधान रामा महामहारी के अधीन थे। प्रताप द्वारा लिए गए ताम्रपत्र आदि में सन 1577 के उत्तरार्द्ध से भामाशाह का नाम लिखा मिलता है। सन् १५७८ में रामा महामहारी के स्थान पर भामाशाह को मवाड राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। प्रताप के देहावसान के बाद भी भामाशाह इसी पद पर बना रहा। (महाराणा प्रताप पृ ६०)।

म लगाई सेना ने नाडोल और केलवाडा की ओर नाकेबंदी करके किले के ममस्त रास्ते रोक दिये और रसद का घातर पहुँचाना कठिन हो गया। तब सरदारों के आग्रह पर महाराणा न राव अक्षयराज सोनगरा के पुत्र भाण को वहाँ किले की रक्षा का दायित्व सौंपकर स्वयं किले से निरलकर राणपुर चला गया और वहाँ से पहाड़ी रास्ते से होकर ईडर राज्य में 'चूलिया' नामक गाँव में पहुँच गया। 3 अप्रैल 1578 को कु भलगढ मुगल के कब्जे में चला गया।

इस समय प्रधान भामाशाह भी कुभलगढ में ही रहता था। वह घेराम दी होने से पहले ही मेवाड राज्य के प्रमुख सरदारों और कु भलगढ की प्रजा को लेकर मालवे में 'रामपुरा' की ओर चला गया। वहाँ के राव दुर्गा चंद्रायत (सीसो-न्या) ने उन सबका बहुत मत्कार किया और सुरक्षा प्रदान की।¹

अकबर ने शाहवाजखा को निरंतर तीन बार मेवाड-अभियान के लिये भेजा। प्रथमवार अक्टूबर 1577 से मई 1578 तक दूसरी बार दिसंबर 1578 से अप्रैल 1579 तक तथा तीसरी बार नवम्बर 1579 से मई 1580 तक वह मेवाड में सैनिक कामवाही करता रहा।

मालवा को लूटना

1578 ई में रामपुरे में अपनी प्रजा का बदबस्त करने के बाद भामाशाह और उसका भाई ताराचंद वहाँ से लौटे। इस समय शाहवाजखा और अय्यमुगल सेनानायक मेवाड से चले गये थे। तब मेवाड की सेना को साथ लेकर उन दोनों ने अकबर के सूबा मालवा में लूटमार मचायी तथा वहाँ से दण्ड के रूप में 25 लाख रूपय और बीस हजार अश्विया प्राप्त की। यह बड़ी रकम वसूलकर मुजगत के चूलिया ग्राम (ईडर) पहुँचकर उन दोनों भाईयों ने इस महाराणा प्रताप को भेंट की। 2 इस राशि से प्रताप को अपनी सेना को पुनः संगठित करने में मदद मिली और उसने आकर मेवाड विजय का अभियान प्रारम्भ किया। कुभलगढ ह्राप से चले जाने के बाद महाराणा काफ़ी निराश हो चुका था। इन दोनों भाईयों की इस वस्तुवगारी से उसे पुनः बल मिला।

अक्टूबर 1580 में दरामखा के पुत्र मिर्जा खानखाना को अकबर ने अजमेर के सूबेदार पद पर नियुक्त किया। इस मेवाड के मामले में सैनिक अभियान न चलाने का सम्भवत आदेश दिया गया था। अतः 1580 से 1584 ई० के अंतरवर्ती चार वर्ष के काल में मेवाड में शांति बनी रही।³ इस समय प्रताप को अपनी

1 बीरबिनाद, भाग 2, पृ 157

2 बीरबिनाद भाग 2, पृ 157

3 डा० रघुवीरसिंह, महाराणा प्रताप, पृ 41

सैनिक बायबाहियां कर मेवाड पर पुन अधिकार करने का मौका मिला ।

दिवेर पर अधिकार

मेवाड लौटने पर महाराणा ने पुन स यज्ञगठन किया । सबसे पहले दिवेर के शाही घाने पर महाराणा ने आक्रमण किया यह कु नलगढ से ४० किलोमीटर उत्तरपूर्व में धरावली पथत श्रेणी की एक घाटी के सिरे पर स्थित है । इससे इसको सैनिक दृष्टि से बड़ा महत्व था । इस घान पर सुतानखा नामक मुगल सेनानायक नियुक्त था । प्रतापसिंह के साथ भामाशाह और उसके साथी भी थे । इस लड़ाई में कु वर अमरसिंह ने वहां के घानेदार सुतानखा पर बछे से वार कर उसकी छाती चीर दी । वह घाटे सहित मारा गया । घाने के अन्य लोग भी मारे गए । कुछ भाग छुटे । वहलोलखा नामक मुगल को महाराणा ने तनवार के एक ही वार में धोडे सहित फाट डाला । इस प्रकार दिवेर की नाल पर महाराणा का अधिकार हो गया । इस आक्रमण में भामाशाह की सैनिक बायबाही शसनीय रही । यह विजय मुख्यतया भामाशाह और उसके साथियों की मदद से प्राप्त हुई थी ।

टॉड ने दिवेर की लड़ाई की मेराथान के युद्ध से तुलना की है ।² मेराथान के युद्ध का यूरोप के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है ।

१५७८ के वर्षाकाल के अंत में प्रताप ने मेवाड में स्थित अनेक शाही घानों को नष्टकर अपने अधिकार में कर लिया

बादशाह के प्रलोभन को टुकराना

मुगल बादशाह अकबर की नीति रही थी कि वह शत्रु को कमजोर करने के लिये उसके खास-खास व्यक्तियों सरलार और पदाधिकारियों को घन और जागीर का लालच देकर अपनी ओर मिला लेता था । सभी भेदगीति अपनाकर एक राजपूत को दूसरे राजपूत के विरुद्ध उच्च मनसब व प्रतिष्ठा देकर अपना सहयोगी बना लेता था । उमने राजपूत राज्यों में आंतरिक प्रशासन करने वाले पदाधिकारियों को भी इसी प्रकार अपने दरबार में बुला कर सम्मान दिया । बाकानेर के अमलान जाति के बच्छावत बमचंद को अपने साथ बैठाकर और दरबार में स्थान देकर अपना उपापात्र बना लिया था । इसी प्रकार मन्तरणा प्रतापक प्रधान भामाशाह को भी भेद-नीति से तोड़ने का उमने प्रयास

१ वीरविनोद भाग २ पृ १५८, डा के धार का, नगो लिखते हैं - In the last fight of Pratap against the mughals, Bhamashaha took a prominent part of the battle of Diver along with the Chundawals and Sakhtavats (Studies in Rajput History p 52)

२ Tod 'An als and Antiquities of Rajasthan' part I p 278.

किया। जब भामाशाह मालवे की ओर गया हुआ था, तब उसने मिर्जा अब्दुरहीम खानखाना को सेना देकर मालवे की ओर भेजा। उसने जाकर भामाशाह से भेंट की। खानखाना ने समझा बुझाकर ओर ऊँचे पद का लोभ देकर भामाशाह को बागशाह की सेवा में लान का प्रयत्न किया। परन्तु भामाशाह ने इसे नामंजूर कर लिया।¹ उस समय मवाड राज्य एवं उसके स्वामी महाराणा प्रताप की बड़ी सक्तावस्था चल रही थी। मेवाड में प्रशासन अस्तव्यस्त हो चुका था आर्थिक ओर सैनिक स्थिति विगड़ चुकी थी। ऐसी सक्ती घड़ी में भामाशाह ने वैभव-शाही जीवन के प्रलोभन को ठुकरा कर अपनी परम देशभक्ति एवं स्वामिभक्ति का परिचय दिया।

चावड में नयी राजधानी कायम करना --

उस समय मेवाड को दोना राजधानियाँ चित्तौडगढ़ और कुम्भलगढ़ मुगलों के अधिकार में थी। कुम्भलगढ़ पर शाहबाजखा ने अधिकार कर लिया था। परन्तु महाराणा वहाँ से निकलकर पहाड़ा में चला गया था।² अतः वहाँ शाही सेना के कुछ सैनिक छोड़कर स्वयं शाहबाजखा गोगून्दा गया, फिर उदयपुर आया। दोनो जगहों पर उसका आसानी से कब्जा हो गया। फिर वह बासवाड़ा और मालवा का प्रार चला गया।² दिवेर की नाल पर कब्जा करने के बाद महाराणा अपने साधियों के साथ कुम्भलगढ़ की ओर बढ़ा। प्रधान भामाशाह उसके साथ था। हम्पीरसर नामक तालाब पर डेरा डाला गया, यह तालाब कुम्भलगढ़ के समीप है। महाराणा के आगमन का समाचार पाकर कुम्भलगढ़ पर स्थित मुगल सैनिक भाग गये। कुम्भलगढ़ पर महाराणा का आसानी से अधिकार हो गया। वहाँ कि सुरक्षा कर प्रबन्ध करके महाराणा ओरना ग्राम में ठहरा वहाँ से जाकर पर अधिकार कर चावड में निवास किया। जब छापन के राठीदा ने अधीनता नहीं मानो तब महाराणा ने ठुणा-चावडिया राठीड को चावड से निकाल कर

१ वीरविनायक, भाग २ पृ १५८ डॉ. कं. प्रार. कातूनगो। लखते हैं - The astute politician and diplomat Khan Khana Abdur Rahim tried hard to seduce Bhamu Shah to the service of the Emperor by alluring offers but failed (Studies in Rajput History, p 52)

डॉ. एच.वी.रमिह का विचार है कि -- सन् १५८१ के अंत तक उस (प्रताप) ने कहीं भी कोई सैनिक भागवाही नहीं की। प्रताप के इस शांतिपूर्ण व्यवहार से प्रेरित होकर मिर्जा खान ने उस वक़्त भामाशाह से संबंध साधा और उससे प्रार्थना किया कि वह प्रताप को समझा बुझाकर प्रकट कर दें वरना मैं जान की राजी करे। परन्तु भामाशाह ऐसा करने को तैयार नहीं हुआ। (महाराणा प्रताप, 'पृ ४२)

२ डॉ० मोभा, उदयपुर राज्य का इति० जिल्द २, पृ ७६०

वहाँ अधिकार कर लिया। इस प्रकार १५८२ ई० में महाराणा ने चावड म नयी राजधानी स्थापित की। चावड म महाराणा के बनवाए हुए महलों के छहूर और चामुडामाता का मंदिर अब भी विद्यमान है।¹ वहाँ रहते हुए महाराणा न वासवाडा और डूगरपुर जो वास्तव में अधीनता स्वीकार कर चुके थे, पर सैनिक अभियान भेज उनको अपने अधीन बनाया।² इस समस्त वायवाही में भामाशाह उसके साथ रहा। चावड म महाराणा के महलों के सामने नाचे की और भामाशाह की हवेली के छण्डहर अब भी मौजूद हैं।

मेवाड पर पुन अधिकार

दिसम्बर १५८४ में अक्बर ने जगन्नाथ कछवाहा को सँ यत्नहित मेवाड म भेजा। वह अगस्त १५८५ पर्यन्त मेवाड म रहा। उसने कई बार प्रताप के निवासस्थान पर आक्रमण किया प्रताप द्वारा अधीन किये गये सब प्रदेशों पर पुन विजय प्राप्त की और मेवाड को बर्गद करने की कई वायवाहियाँ कीं। परन्तु वह प्रताप को पकड़ने में सफल नहीं हो सका, फिर भी प्रताप को इस अवधि में गभीर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा उसे और उसके साथियों को निरन्तर पर्वतीय शत्रु म यहाँ वहाँ घूमना पड़ा। जगन्नाथ कछवाहा २१ वर्ष तक मेवाड म रहा। अगस्त १५८५ में अक्बर पंजाब और काबुल की तरफ चल पड़ा, तब जगन्नाथ कछवाहा को भी उसने मेवाड से बुला लिया।

उसके चले जाने के बाद मेवाड के शासक और यहाँ का प्रजा ने चन की सास ली। इसके बाद प्रताप की मृत्यु (१५९७ ई) पर्यन्त ११ वर्ष क अन्तराल म अक्बर ने मेवाड पर कोई सैनिक अभियान नहीं भेजा। बादशाह इस अवधि म उत्तर पश्चिमी सीमांत म अफगानों के साथ युद्धों में व्यस्त रहा अतः उस मेवाड की ओर ध्यान देने का अवसर ही नहीं मिला। महाराणा ने इसके बाद एक ही वर्ष (१५८६ ई) म चित्तौडगढ़ और माडलगढ़ को छोड़कर सारे मेवाड प्रदेश पर पुन आधिपत्य कर लिया। इस समय काय म भामाशाह के

१ वीरविनोद भाग २, पृ १५९

२ वीरविनोद, भाग २ पृ १५८-१५९ डा श्रीमती राजपूताने का इतिहास जिल्द २ पृ ७६१। इस लड़ाई में चौहानों ने प्रतिरोध किया। चौहानों के सरदार रावत भालू (मारगनेबोन)को सना देकर भेजा गया। सोमनदी पर लड़ाई हुई। उसमें रावत भालू गभीर घायल हुआ और उसका काका रणसिंह मारा गया। चौहानों की हार हुई। डूगरपुर और वासवाडा के रावतों ने महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली।

यागदान को स्वीकार करने हुए कविराज श्यामलदास ने लिखा है- “इन महाराणा ने फिर फौज इकट्ठी करके शाही धानो पर हमला किया जो उनके प्रधान भामाशाह की हिम्मत से हुया था। चित्तौड़, माडलगढ़ और अजमेर के विषय कृपया चादनाही धान डाल दिये गये”¹

मेवाड़ के पुनर्गठन और पुनर्व्यवस्था को लागू करने में भी प्रधान भामाशाह का बहुत योग रहा। उनके काल में उजड़े हुए मेवाड़ में पुनः बस्तिना बसाई गई थीनी का व्यवस्था की गई व्यापार की ठीक किया गया, और मार्गों की सुरक्षा का प्रबंध किया गया। भामाशाह द्वारा महाराणा प्रताप की आज्ञा से जारी किए गए ताम्रपत्रों, परवानों आदि से इस बात की स्पष्ट जानकारी मिलती है। भामाशाह जस अनुभवों और कुशल प्रबंधन के लिए यह सब सहज और उपयुक्त था।

आर्थिक सहयोग-

चित्तौड़गढ़ पर १५६८ ई में महाराणा उदयसिंह के काल में ही मुगलों का अधिकार हो चुका था। १५७८ ई में मुगल सेनापति शाहवाज खान ने कुम्भलगढ़ गंगूटा और उदयपुर पर भी आधिपत्य कर लिया था, तब महाराणा प्रताप को अपने परिवार और साथियों के साथ पहाड़ों और जंगलों में सुरक्षा हेतु भटकते रहना पड़ा। उसे सात बार ऐसे मौके आए जब खाना छोड़कर भागना पड़ा। जंगल में कभी सावा कोना जम नृण प्राय का भोजन करके निर्वाह करना पड़ा। विभिन्न युद्धों में उसके प्रच्छेद सैनिक और अनेक सरदार मारे जा चुके थे। मुगलों ने देश को उन्नाह लिया था बस्तिना लूट कर दी थी कृषि वाणिज्य-व्यापार टप हो गया था मेवाड़ के अपार धन धन की हानि हुई थी। महाराणा प्रताप ने इन सारी परिस्थितियों में आगे सधप को जारी रखने में अपने को असमर्थ पार मारवाह होकर सिंध की धार जाने का निश्चय किया ही प्रयत्न मुगल आधिपत्य को स्वीकार करने में अपना हित समझा था। क्योंकि धन के अभाव में नवीन सैन्य संगठन कर मेवाड़-विजय के अभियान को गति देना असंभव जान पड़ने लगा। ऐसी विपन्न अवस्था में प्रधान भामाशाह ने विद्वान धनराशि क्षात्र महाराणा प्रताप को भेंट की, जिसके द्वारा पश्चिम हज़ार सैनिकों का बारह वर्ष पयंत निर्वाह किया जा सकता था। इस धन से ही प्रताप ने पुनः मेवाड़ एजित की और मेवाड़ विजय में सफल हुए।² भामाशाह के इसी सामयिक धन सहयोग

१ बीरबिना भाग २ पृ १६३-१६४

२ जयसिंह महाराठ, “राजपूताना का इतिहास”, भाग १ पृ २३७

को मेवाड़ में चिरस्मरण किया जाता रहेगा। यह घटना १५८० ई के लगभग की होनी चाहिए। भामाशाह द्वारा समर्पित किया गया धन मेवाड़ का ही खजाना था अथवा भामाशाह और उसके पूर्वजों द्वारा अर्जित की गई निजी सम्पत्ति थी, इस सम्बन्ध में विद्वानों के दो विभिन्न मत हैं।

फनल जेम्स टाड ने लिखा है- शत्रु के प्रवाह को रोकने में असमर्थ होने के कारण उस (प्रताप) ने अपने चरित्र के अनुकूल एक प्रस्ताव किया और तदनुसार मेवाड़ एक रक्त से अशुद्ध चित्तों को छोड़कर सिंसोदियों को सिंधु के तट पर ले जाकर वहाँ की राजधानी सोमड़ी नगर में अपना लाल भण्डा स्थापित करने एवं अपने तथा अपने निदम शत्रु (अकबर) के बीच में रेगिस्तान छोड़ने का निश्चय किया। वह अपने कुटुम्बियों और मेवाड़ के रूढ़ और निर्भीक सरदारों के साथ जो अपमान की अपेक्षा स्वदेश निर्वासन को अधिक पसन्द करते थे चबली पर्वत से उतर कर रेगिस्तान की सीमा पर पहुँचा। इतने में एक ऐसी घटना हुई जिससे उसको अपना विचार बदलकर अपने पूर्वजों की भूमि में ही रहना पड़ा। यद्यपि मेवाड़ की छानों में सत्ताधारण कठोरता के नाम का उल्लेख मिलता है तो भी वे अद्वितीय राजर्षिक के उदाहरणों से खाली नहीं हैं। प्रताप के मंत्री भामाशाह ने, जिसके पूर्वज बरसा तक उसी पद पर नियत रहें, इतनी सम्पत्ति राणा को भेंट कर दी कि जिससे पच्चीस हजार सेना का १२ बंद तक निर्वाह हो सकता था। भामाशाह मेवाड़ के उदारक के नाम से प्रसिद्ध है।^१

१ Col James Tod- 'Unable to stem the torrent he had formed a resolution worthy of his character he determined to abandon Mewar and the blood stained Cheetore (no longer the stay of his race) and to lead his Seesodias to the Indus plant 'the crimson banner on the insular capital of the Sogdians and leave a desert between him and his inexorable foe With his family and all that was yet noble in Mewar, his chiefs and vassals a firm and intrepid band who preferred exile to degradation, he descended the Aravulli, and had reached the confines of desert when an incident occurred which made him change his measures and still remain a dweller in the land of his forefathers If the historic annals of Mewar record acts of unexampled severity, they are not without instances of *

इस सवध मे डा गीरोशकर हीराचन्द ओभा का मतव्य है कि भामाशाह द्वारा लाकर प्रताप को भेंट की हुई सम्पत्ति उसकी या उसके पूर्वजों द्वारा निजी तौर पर अर्जित की हुई नहीं थी। अपितु यह मेवाड का ही चित्तौड़गढ़ से स्था-
नांतरित किया हुआ खजाना था, जो अयन छिपाकर रखा गया था और जिसे वह भकेला ही जानता था। 'महाराणा कुभा और सागा की संचित की हुई सारी सम्पत्ति बहादुरशाह की पहली चढाई के पूर्व ही मुसलमानों के हाथ न लगे इस विचार से चित्तौड़ से हटाकर पहाड़ी प्रदेश में सुरक्षित की गई थी। इमा से बहा-
दुरशाह और अक्बर को चित्तौड़ विजय पर कुछ भा द्रव्य बहा से हाथ न लग सका। भामाशाह महागणा का विश्वासपात्र प्रधान होने के कारण उसी की सलाह के अनुसार मेवाड राज्य का खजाना सुरक्षित स्थानों में गुप्त रूप से रखा जाता था, जिसका ध्यौरा वह (भामाशाह) एव वही म रखा करता था, और आवश्यकता पडने पर उन स्थानों में द्रव्य निकाल कर लडाई का खर्च चनाया करता था। वह महाराणा प्रतापसिंह के पीछे महाराणा अमरसिंह का प्रधान बना और महाराणा की सम्पत्ति की व्यवस्था भी पहले के अनुसार बहा करता रहा। अपनी अंतिम बीमारी के दिनों में उमने उपयुक्त वही अपनी स्त्री को देकर कहा कि इसमें राज्य के खजाने का ध्यौरा विवरण है इसलिय इसको महाराणा के पास पहुँचा देना।¹

डा ओभा ने विभिन्न प्रमाण जुटाकर यह प्रमाणित किया है कि महाराणा प्रताप बहुत सम्पत्तिशाली था और उसके पास धन की कोई कमी नहीं थी। इसी से वह तथा उसका पुत्र दोनों बरमा तक बादशाहा से लडन में समय हुए।²

कविराजा श्यामलदास ने भी लिखा है "भामाशाह बड़ी जुरअत का आदमी था महाराणा प्रतापसिंह के शुरू समय से महाराणा अमरसिंह के राज्य के २॥

* unparalleled devotion The Minister of Pertap whose ancestors had for ages held the office placed at his prince's disposal their accumulated wealth which, with other resources is stated to have been equivalent to the maintenance of twenty five thousand men for twelve years The name of Bhama Sah is preserved as the saviour of Mewar ('Annals and Antiquities of Rajasthan, Volume I, P 275)

१ डॉ ओभा-' राजपूताने का इतिहास , जिल्द २ पृ १३०२ १३०३

२ वही, जिल्द २, पृ ७७४ ७७८

तथा ३ वष नव प्रधान रहा उसने ऊपर लिखी हुई बड़ी बड़ी सट्टाईयां म हजारों
 आदिमियों का खच चलाया । । इसने मरने व एक दिन पड़ले अपनी स्त्री को
 एक बही अपने हाथ की लिखी हुई थी, और कहा कि इसमें मेवाड के खजाने का
 कुल हाल लिखा हुआ है जिस वषत तकलीफ हो यह बही उन (महाराणा)
 नजर करना । यह खरडवाह प्रधान इस बही के निध हुए खजाने से महाराणा
 अमरसिंह का कई वषों तक खच चलाता रहा ।¹ कविराजा श्यामश्याम ने भी
 कही भामाशाह द्वारा स्वयं की सम्पत्ति मेवाड के उडार हतु भेंट करने की बात
 स्वीकार नहीं की है ।

डा कालिकारजन कानूनगो का विचार है नि प्रताप क भाग्य के सवट के
 वषों में भामाशाह द्वारा लाकर दिया हुआ धन अकबर के मालवा सूबे को टुकर
 प्राप्त किया गया था ।²

परंतु परिस्थितियों को देखते हुए उपयुक्त मत समीचीन नहीं जान पड़ता ।
 १ यह समझ नहीं कि अपने ही खजाने का विवरण महाराणा प्रतापसिंह को
 न मालूम रहा हो और उस उसका मंत्री भामाशाह ही जानता हो । मेवाड में अतुल
 सम्पत्ति थी इसमें इकार नहीं किया जा सकता यदि ऐसा नहीं होता तो कु भा
 के काल में महारु निर्माणवाय नहीं हो पाने प्रताप ने भामाशाह को अपना प्रधान
 तो हल्दीघाटी युद्ध (१५७६ ई) के कुछ दिनों बाद बनाया, यह इतिहास का सत्य है ।
 जबकि चित्तौडगढ़ का पतन १५६८ ई में महाराणा उदयसिंह के काल में ही हो
 चुका था । अतः वहां से स्थानांतरित खजाना या तो कु भनगण पहुंचा दिया गया
 था, या अथ किसी सुरक्षित स्थान पर । उस समय से ही भामाशाह को खजाने का
 ज्ञान होना भी ठीक प्रतीत नहीं होता । भामाशाह उदयसिंह के काल में ही किसी
 महत्वपूर्ण पद पर रहा हो ऐसा कही उल्लेख नहीं मिलता । स्वयं प्रताप भी नहीं
 जानता था कि वह राजगद्दी पर बठाया जायगा ।

२ विश्रमादित्य के काल में १५३२ ई में गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह ने
 चित्तौड़ को घा घेरा तब भारी धनराशि लेकर रानी कमवती ने उससे सधि कर
 ली । कुछ समय बाद बहादुरशाह ने पुन चित्तौड़ को घेर लिया और उस समय

१ वीरविनोद भाग २ पृ २५१

२ Dr K R Qanungo - During the critical years of Pratap's
 fortune Bhamra Shah raided Akber's subha of Malwa' and
 brought a booty of twenty lakhs of ruppees and twenty tho-
 usand ashrafis to the Maharana ' ('Studies in Rajput His-
 tory, P 52)

‘बिस्तीर का दूसरा शाका’ (जौहर) हुआ। इस प्रकार बाहरी आक्रमणों से मेवाड़ को अपार जन धन की हानि हुई थी।

प्रताप ने मुगल-समर्थन के काल में मुगलों को रसद न पहुँचे इस इरादे से सारे मेवाड़ क्षेत्र में बस्तियों को खाली करके उन्हें जंगलों और पहाड़ों में स्थानान्तरित करा दिया था। उसी समय प्रजा में यह भी आदेश प्रसारित करा दिया कि कोई भी मदानी भाग में खेती न करे खेती करने पर उसे कठोर दण्ड दिया गया। इन बाधवाहियों से राज्य की आय का स्रोत नष्ट हो गया। मुगलों के विध्वंसक कार्यों से भी राज्य का आय की धक्का लगा। व्यापारिक भाग बंद हो चुके थे और व्यापार-वाणिज्य भी ठप्प हो गया था। ऐसी दशा में प्रताप के पास राज्य की आय का संग्रह होना संभव नहीं था।

देश की इस आतंरिक दुःस्थिति का पता उस घटना से भी चलता है कि १६१५ ई में मुगलों के साथ महाराणा अमरसिंह की संधि होने पर कुवर कर्णसिंह उस दिन शाहजादा खुरम के पास गया। “जब शाहजादे ने कर्णसिंह को अपने साथ अजमेर चलने के लिए कहा, तो कर्णसिंह ने अपने मुल्क की बर्बादी व तकलीफों का हाल कहकर जल्दी सफर न कर सकने का उज्र किया। शाहजादे ने ५०००० रु नकद अपने पास सफर खर्च के लिए कुवर को दिये, उक्त कुवर ने अपना सामान दुस्त करके शाहजादे के साथ चलने की तैयारी की।”^१

भवश्य ही महाराणा प्रताप और अमरसिंह के काल में मेवाड़ की आर्थिक स्थिति विगड़ चुकी थी। राज्य का खजाना खाली हो चुका था, मुगलों के साथ संधि होने पर पुनः मेवाड़ का आर्थिक विकास हुआ। महाराणा कर्णसिंह और जगतसिंह के काल में मेवाड़ की अच्युत आर्थिक उन्नति हुई। वह शांति काल था। इसी कारण महाराणा जगतसिंह और राजसिंह विभिन्न निर्माण कार्य और दान कर सके। महाराणा राजसिंह द्वारा सिंहासन पर बैठने के वष (स १७०९ = १६५२ ई) में एकलिंगजी में ‘रत्नों का तुलादान’ करना विवादास्पद है। डॉ. श्रीमन्ना ने लिखा है-“उसने (राजसिंह ने) उसी वष के मागशीप मास में एकलिंगजी जाकर रत्नों का तुलादान किया। समस्त भारतवर्ष में रत्नों के तुलादान का यही एक प्राचीन लिखित प्रमाण मिला है।”^२ डॉ. श्रीमन्ना ने भूल से इसे ‘रत्नमयी’ तुला समझा है जबकि यह तुला रत्ननिर्मित थी जिस पर सोना और रत्न जड़े हुए थे। जगन्नाथराय प्रशस्ति में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है-

१ धीरविन्द, भाग २ पृ २३८

२ डॉ. श्रीमन्ना, राजपूताने का इतिहास, जिल्द २, पृ ७७७

वर्षे निष्ठ यत्परिगणयुने मागशीर्षेपि शुक्ले पचम्या -
 मेक्षितेने वनवमणिमयी सतुला राजताख्याम ।
 राणा श्री राजसिंह क्षितिपतिमुबुट श्रीजर्गात्सहपुत्र
 वृत्वा तत्र द्विजाभ्यान् सपदि विहितवान् राजराजेद्रतुल्यान् ॥ १

राजसिंहकालीन एकलिंग - मन्दिर की प्रशस्तिने भी लिखा है-

“ राणा श्री जगतसिंहात्मज श्रीराजसिंहनृपति प्रीत्यर्कलियाप्रतो रत्ने पूर्ण-
 तुलावृत्ती व्यरचयत् सच्चित्रवृटाधिप ॥१८॥

एकलिंग क मन्दिर की यह प्रशस्ति स १७०९ की है, वतमान म यह प्रशस्ति
 राजकीय संग्रहालय उदयपुर म स्थित है (डा ओम्का, राज० का इति०, जिल्द २,
 पृ ८४२ पर पादटिप्पणी)

इस तुला को फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणों म बाट दिया गया था । अत रत्नों के
 तुलादान वाली बात इतिहास सिद्ध नहीं है ।

इन प्रमाणों से जात हाता है कि मेवाड राज्य की आंतरिक स्थिति बिगड
 चुकी थी । राज्य का खजाना उस समय खाली हो गया हो तो कोई आश्चय
 नहीं ।

३ भामाशाह ने यदि मेवाड का हा खजाना लाकर दिया होता तो यह उसका
 कतव्य था इसके लिए उसके प्रति किसी विशिष्ट आदर या आभार की आव-
 श्यकता नहीं थी । और, सैनिक अभियाना का संचालन करना 'प्रधान' के दायि-
 त्व था । प्रधान बनने पर यह राज्यकीय स सेना का संचालन करता ही रहा ।
 परंतु बाद म उसके वंशजा को मेवाड के शासको द्वारा जो विशिष्ट सम्मान
 दिया गया उससे प्रमाणित होता है कि भामाशाह ने ऐसा ही कोई असाधारण
 काय किया होगा जो अन्य किसी ने नहीं किया । जसा कि मेवाड म मायता
 प्रचलित रही है भामाशाह न अपनी स्वय की सम्पत्ति महाराणा को समर्पित की
 थी । यही वह असाधारण काय होना चाहिए जिससे महाराणा अत्यंत प्रभावित
 एव प्रसन्न हुआ । बाद म महाराणा न घोसवालो की जाति में भामाशाह के
 वंशजों को जाति भोज आदि के अवसर निलक निकालन का सर्वोच्च सम्मान
 प्रदान करवाया ।

४ भामाशाह का पिता भारमल्ल स्वय धनी व्यक्ति था । प्राय धनी और कत-
 व्यनिष्ठ व्यक्तियों को राज्य मे बाहर स भामंत्रित कर उच्चपद दिये जात थे ।
 राणा सागा न भारमल्ल को धलवर से बुलाकर रणयम्भोर का किलदार नियुक्त

किया था। आर्थिक विपनावस्था के समय राज्य के धनी मानी मेंों से धन लेने की परम्परा अब तब प्रचलित रही है। ऐसे मौकों पर यदि स्वयं धनी लोग अपना धन स्वच्छता दे दें तो न केवल राज्य के हित में होता, अपितु स्वयं के लिए भी उपयोगी होता। राज्य ही तो धनी लोगों के धन, माल, सम्पत्ति और व्यापार की सुरक्षा का निर्वाह करता था।

५ नागपुरीय लु कागच्छ की पट्टावती में भी भारमल्ल की अठारह करोड़ की धनराशि का स्वामी बताया है। इससे उसके धनाढ्य होने की सूचना मिलती है।

६ महाराणा उदयसिंह ने भारमल्ल की १५५३ ई में एक लाख का पट्टा प्रदान किया था। इतनी बड़ी जागीरी या तो किसी बड़े सरदार को दी जाती थी, या निक्ट के रिश्तेदार को या किसी महान्, वतध्यनिष्ठ और बहुत धनी व्यक्ति को ही दी जाती थी, जो उसके सम्मान के अनुबल होती। इस पट्टे के कारण भी भारमल्ल के पास और अधिक धन एकत्र हो गया था।

७ प्रताप ने भामाशाह को मेवाड़ राज्य का प्रधान नियुक्त किया था। प्रधान का कर्तव्य है कि वह राज्य की बिगड़ती दशा को यत्नकर प्रकारेण सुधारे। अतः भामाशाह ने राज्य का उद्धार करने के लिए अपनी सम्पत्ति भी अर्पित कर दी थी, तो कोई आश्चर्य नहीं।

८ यदि यह माने कि भारमल्ल और भामाशाह ने मेवाड़ के उच्चपदी पर रहते हुए धन अर्जित किया ही, तो भी वह मूलतः मेवाड़ की ही सम्पत्ति थी। भामाशाह ने उसे विपत्ति के समय पुनः महाराणा को अर्पित कर अपनी स्वामिभक्ति का परिचय दिया था।

९ प्रताप के त्याग स्वामिमान और बलिदान से उसका प्रधान भामाशाह प्रभावित हुए बिना नहीं रहा होगा, अतः मेवाड़ के उद्धार के लिए अपनी पारिवारिक व्यक्तिगत संपत्ति को भी महाराणा को सौंपकर उसने गौरव का अनुभव किया होगा। उस समय व्यक्तिगत स्वायत्त एव धन की तुलना में मेवाड़ की स्वतन्त्रता का लक्ष्य महान् था। प्रताप का यत्न न केवल राजस्थान, अपितु पूरे देश में फैल चुका था।

१० एक प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ में लिखा है "राणाजी की अठारहमिथजी की विषामाह पाति साहजी रे पीजा जोर दबाया। पवगु नी क्यु ही पहू के नही। तद दीवाण जी बह्यो। हु अहमन्तार २ पातिसाहै तीरे जासा। तर साँ भामै बह्यो। बारा बरस साइ पाब हजार घोडा नी तेल न पावरण ताइ चाहाजसी, सी

हू दावै ही ठठा मु देसु । दीवाण इसी मत विचारो ।¹

इससे प्रकट होता है कि भामाशाह ने स्वयं का धन महाराणा को देने का वादा किया ।

उपयुक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि भामाशाह ने अपनी स्वयं की अर्जित पारिवारिक विशाल सम्पत्ति का ले जाकर महाराणा प्रताप को सहाय भेंट कर दिया था और उसे मेवाड़ के पुन उद्धार स्वतंत्र करने के लिए प्रेरित किया । देशभक्त, कर्मवीर मेवाड़ उद्धारक भामाशाह का नाम इसी कारण अमर हो गया ।

अहमदाबाद-अभियान

महाराणा प्रतापसिंह की मृत्यु (१५९७ ई) के बाद चावड में मेवाड़ की राजगद्दी पर उसका प्येष्ठ पुत्र अमरसिंह बैठा । भामाशाह अपनी मृत्यु पश्चात् महाराणा अमरसिंह के राज्यकाल के प्रारम्भिक ढाई तीन वर्षों तक प्रधान पद पर बना रहा । महाराणा अमरसिंह ने भी पिता की नीति का अनुसरण करते हुए मुगलों के साथ संधि जारी रखा । उसके काल में भामाशाह ने अहमदाबाद पर आक्रमण कर वहाँ से दो करोड़ रुपये और बहुत सा सामान प्राप्त कर महाराणा अमरसिंह को भेंट किया । इस घटना का उल्लेख 'सुमाणरासो' में विस्तार में मिलता है । इसका लेखक जन कवि नीलतविजय था जिसके जन्म का नाम दलपत था । उसने उदयपुर के राणाओं के विषय में सुमाणरासो नामक राजस्थानी भाषा के विस्तृत काव्य की रचना की है । इसकी रचना महाराणा सप्रामसिंह (द्वितीय) के राज्यकाल (स १७६७ से १७९० अर्थात् १७११ से १७३४ ई) में हुई थी । यद्यपि यह उक्त घटना के लगभग डेढ़ सौ वर्ष बाद लिखी गई थी, परन्तु इसमें अनेक नवीन तथ्यों की जानकारी मिलती है । भामाशाह के सम्बन्ध में भी उसके अहमदाबाद पर आक्रमण का वर्णन किया है ।²

१ यह हस्तलिखित ग्रन्थ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में सुरक्षित है, अर्थात् ३५४६४ । इस ग्रन्थ में प्रताप संबंधी कुछ महत्वपूर्ण बातों का वर्णन मिलता है । इस ग्रन्थ के आधार पर डॉ॰ पुरुषोत्तमलाल मेनारिया ने एक लेख प्रकाशित कराया है, देखें प्रतापस्मृति ग्रन्थ, पृ 134-135।

२ कपड पीया कापडा, लीघो धन दो कोड ।

साथ समान किया सहू, समा किया सजोड ॥३५१३॥

अहमदाबाद सु भामो साह अमर पास आयो उझाह ।

असो सहस साथे असवार, घाए बाए अत न पार ॥३५१४॥

('सुमाणरासो' देखें परिशिष्ट)

धन-प्रेम

'नागपुरीय लु कागच्छ पट्टावली से ज्ञात होता है कि भामाशाह लु कागच्छ का अनुयायी था। उसके गुरु का नाम 'देवागर था। भामाशाह ने दिगम्बर मतानुयायी नरसिंहपुरा शाखा के अनेक लोगों को अपने मत में दीक्षित कराया था। बहुत सारा धन देकर उसने १७०० घरों को अपने मत के बना लिया था। उस समय उसके इन प्रयासों से लु कागच्छ का बहुत फैलाव हुआ और भिण्डर आदि गावों में इस मत के अनुयायी एक लाख बीस हजार से भी अधिक आदमियों को घर बन गये।^१ इस प्रकार भामाशाह ने धार्मिक भावना को प्रदर्शित किया।

लु कागच्छ के अनुयायी होने पर भी भामाशाह धार्मिक उदार रहा, उसने अनेक वपुण्ड शक्त धर्म अनेक जन मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया था जो मुस्लिम आक्रमणों के कारण विध्वंस हो गये थे।

उदारदानी

भामाशाह उदारमना दानी भी था। वह मुक्तहस्त से चारणों कवियों और जरुरतमंदों और भ्रम्य लोगों को धन दिया करता था।

डॉ० मोहनलाल जिनासु ने लिखा है- 'एक बार भामाशाह ने महाराणा प्रताप को उदयपुर में प्रीतिभोज पर आमंत्रित किया, जिसमें सब भोसवाला को योता दिया गया। इसमें निमंत्रण पाकर कवि शंकर भी सम्मिलित हुए। कहते हैं कि भामाशाह ने इन्हें इस अवसर पर एक अमूल्य नग भेंट किया था।' (राजस्थान में चारणों का डिंगल साहित्य में योगदान नामक अप्रकाशित शोध-प्रबंध)।

कवि शंकर बारहठ चारण जाति का था। इस भोज के अवसर पर इसका बनाया निम्नलिखित दोहा प्रचलित है-

“भोमे जग जिमाडियो, नेवतरिया नव खण्ड।

सिर तपिया वासक तण काजलियो ब्रह्म ड॥”

इसका उल्लेख डॉ० हीरालाल माहेश्वरी ने अपने 'राजस्थानी भाषा और

१ 'पुन भामाशाहेन दिगम्बरमतया नरसिंहपुरा स्वर्णेषु समानोत्ताः । बहुस्व दत्त्वा १७०० गृहाणि तेषामात्मनीयानि कृतानि । भिण्डरका दिपुरेषु तदा च जस आदकप्रहाणां चतुरशीतिसहस्राधिकं तस्यमेकम् ।

(नागपुरीय लु कागच्छीय पट्टावली)

साहित्य नामक शोध-वर्ध में किया है। कहते हैं कि 'मोतीमगरी' के महल में भामाशाह ने एक प्रीतिभोज या आयोजन रखा। इस अवसर पर सब सरदारी की पत्नियों पर दोनों में मोतियों के पुट्टिके परोसे गये। भामाशाह ने कई बार भोसवाल यात को भोज दिये और 'बावनी' (बावन गाँव) जिमायी। कई बार ग्राह भण्डों की 'चीरासियां' जिमायी।

अगरधद नाहटा के संग्रह में सुरक्षित एक गुटके में भामाशाह सवधी एक गीत में अतिम पद्य इस प्रकार मिलता है

‘भारमलोत तणो भर मण्डल, स सबुद अचल जय सतार ।

सारग जगड वे सांग रिवा, दीठी भामी जग दातार ॥

इस प्रकार भामाशाह की दानवीरता उसक काल में ही प्रसिद्ध हो गयी थी। निर्माण काय

भामाशाह जिस प्रकार वीर और कुशल प्रशासक था, उसी प्रकार वह अरुणा निर्माता भी था। चित्तौड़ दुर्ग पर कवायद के मदान के पश्चिमी किनारे पर मेगजीन (तोपखाना) के भवन के सामने भामाशाह की हवेली स्थित थी। यह बाद में महाराणा सज्जनसिंह द्वारा कवायद का मदान बनवाते हुए तुड़वा दी गयी थी। अवश्य ही यह हवेली पूव में उसके पिता भारमल्ल की रही होगी परंतु भामाशाह द्वारा उसका विस्तार किया गया हो, तब वह उसके नाम से प्रसिद्ध हो गयी हो। कुछ समय पूव यहाँ 'आर्किमोलोजिकल डिपार्टमेंट' ने खुदाई कराई थी। इस विशाल भवन की बारादरी वाला भाग और बाहर खम्भे अब तक देखे जा सकते हैं।

चित्तौड़ दुर्ग की तलहटी में पाडनपोल के पास भामाशाह की 'हस्तिशाला' थी। चावड में महाराणा प्रताप के महलों के सामने नीचे सडक के दूसरी ओर 'भामाशाह की हवेली' के खडहर घाज भी विद्यमान हैं।

चावड के निकट जावर में भी महाराणा प्रताप कुछ काल पशुत रहा। सुरक्षा और गोपनीयता की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण स्थान था। यहाँ पर भी मोतीबाजार के समीप 'भामाशाह की हवेली' होना बताया जाता है। जावरमाता का मंदिर जो मूल में ७ वीं शती में राजा शिलादित्य के काल में निर्मित हुआ था उस मालवा के शासक गिर्यासुदीन ने नष्ट कर दिया था। सन १२९३ ई में भामाशाह ने इस देवी मंदिर का भी जीर्णोद्धार कराया था।^१ कहते हैं कि घुलेवस्थित बंसरियाजी या ऋषभदेव के मंदिर का जीर्णोद्धार भी भामाशाह ने करवाया था।

१ डॉ. रघुवीरसिंह, 'महाराणा प्रताप', पृ. ६१

भामाशाह का अंतिम काष्ठ उदयपुर में स्थित हुआ। यहाँ राजमहलों के पास उत्तर में गोमुलचंद्रमाली के मंदिर के समीप एक स्थान 'दीवान जी की पोत' के नाम से प्रसिद्ध है, वह भामाशाह की हवेली ही बताया जाता है। एक पुरानी वही¹ में उल्लेख है कि महला के नीचे 'भामाशाह की बाड़ा घी, इसकी स्थिति का सही संकेत प्राप्त नहीं हो सका।

महाराणा अमरसिंह के काल में महलों के कुछ अंशों का निर्माण हुआ। इनके निर्माण में भामाशाह का योगदान रहा है। कविराज श्यामलदास ने लिखा है— "महाराणा अमरसिंह ने जिनका प्रधान भामाशाह घोसवाल कावडिया जात का महाजन बड़ा आदर और बहादुर था उसी के प्रधानों में महला का अखिल दर्जा, जिसको 'बड़ी पोल' कहते हैं। और 'अमर महल', जो जनाने महलों के नजदीक है बनवाय है।"²

इस प्रकार भामाशाह ने स्थापत्य और कला के प्रति अपनी रुचि प्रकट की थी।

अंतिम दिन और मृत्यु

भामाशाह के अंतिम दिन संध्या की लम्बी दीड़ के बाद कुछ शांति से गुजरे। महाराणा प्रतापसिंह के काल में ही १५८६ ई. से मुगलों के मेवाड़ पर आक्रमण शुरू हो गये थे। इस महाराणा की १५९७ ई० में मृत्यु हो गयी। महाराणा अमरसिंह के काल में पुनः १६०० ई. में मुगल शाह आदिलशाह ने बड़े शाहजादे सलीम को सेना सहित मेवाड़ पर भेजा। सम्भवतः तब तक इस कमबोर प्रधान भामाशाह की मृत्यु हो चुकी थी। १५८६ से १६०० ई० के मध्यवर्ती शांति काल में राजधानी चावड और उदयपुर बदलती रही। फिर भी उदयपुर का निर्माण इस अवधि में तेजी से हुआ। भामाशाह इस भाग में अग्रणी था।

भामाशाह की मृत्यु ११ जनवरी १६०० ई० (भाद्र सुदि ११ संवत् १६५६) को हुई। उसके बाद उसका पुत्र जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने अपना प्रधान बनाया। मृत्यु के समय भामाशाह की आयु ५१ वर्ष ७ माह थी। अत्यंत संध-शील जीवन व्यतीत करने के कारण ही वह दीर्घायु प्राप्त नहीं कर सका। महाराणा प्रताप के साथ उसने भी एक स्वामिभक्त सेवक की तरह हर प्रकार की कठिनाई का सामना किया।

¹ कविराज श्यामलदास ने लिखा है— 'इम (भामाशाह) ने मरने के एक दिन पहिले अपनी स्त्री को एक वही अपने हाथ की लिपी हुई दी और कहा कि इसमें

१ यह वही मरे भिन्न डॉ० राजेन्द्रनाथ पुरोहित के निजी संग्रह में सुरक्षित है।

पुरोहित-संग्रह, वही सं ५, वि सं १७६५-८१, पृ २२०

२ बीरबिनोद, भाग ३, पृ २५१

"जा धन के हित नारि तजै पति,
 पूत तजै पितु शीलहि सोई ।
 भाई सौं भाई लरै रिपु से पुनि ,
 मित्रता मित्र तजै दुख जोई ।
 ता धन को बनिया ह्वै गिन्यो न ,
 दियो दुख देश के आरत होई ।
 स्वारथ अप्यं तुम्हरोई है, ।
 तुमरे सम और न या जग कोई ॥"

बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

4- ताराचन्द

भारमल्ल कावडिया के दो पुत्र हुए-भामाशाह और ताराचन्द । ताराचन्द भामाशाह का छोटा भाई था, । इसकी माता का नाम कपू रदेवी था ।

भामाशाह के समान ताराचन्द भी वीर, साहसी, त्यागशील और नीति-निपुण कुशल प्रशासक था इसके अतिरिक्त वह कला और साहित्य का अनुरागी और उच्च प्राथम्यता भी था । वह महाराणा प्रताप के योग्य और विश्वसनीय अनुयायियों में से एक था ।

जन्म व बाल्यकाल

ताराचन्द भामाशाह से चार वर्ष छोटा था ।¹ वह भी अपने बड़े भाई भामाशाह की भांति महाराणा प्रताप का बालसखा, युवासाथी और योग्य सलाहकार था ।

हल्दीघाटी का युद्ध

मुगल बादशाह अकबर की विशाल सेना जिसका नेतृत्व आध्वर के राजा भगवन्तसिंह का पुत्र कुंवर मानसिंह कछवाहा कर रहा था, के साथ महाराणा प्रताप की अल्प किन्तु आत्मविश्वास और देशप्रेम की धनी सेना के साथ १८ जून १५७६ ई० के दिन छमनोर ग्राम के पास बनास नदी के तट पर घमासान युद्ध हुआ । यह युद्ध हल्दीघाटी के मुहाने पर हुआ था, इस घाटी में से निकलकर महाराणा प्रताप की सेना ने मुगल सेना पर आक्रमण किया था, युद्ध के बाद मेवाड़ की शेष सेना इस घाटी में होकर वापिस लौट गई थी, इसी कारण यह इतिहास प्रसिद्ध युद्ध 'हल्दीघाटी का युद्ध' नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

इस युद्ध में महाराणा प्रताप के समस्त वीर योद्धा और प्रमुख सरदार सम्मिलित हुए थे । राणा ने युद्ध से पूर्व अपनी सेना को पारम्परिक रीति से विभाजित और संगठित किया था जिसमें हरावन चंदावल, दक्षिण बाजू, धामबाजू और मध्य-ये पाँच विभाग रख गये थे । दाहिने बाजू का नेतृत्व राजा रामसाहसकर के साथ भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द को सौंपा गया था । इनके

१ ताराचन्द स्मारक छप सादरी की विनयि में लिखा है कि 'भामाशाह का जन्म वि सं १६०० में और ताराचन्द का जन्म वि सं १६०४ घाघाड कुशल दसम की चित्तौड़गढ़ में हुआ था' परन्तु इसका कोई आधार ज्ञान नहीं होता । 'वीरविन्द' में भामाशाह के जन्म की तिथि वि सं १६०४ घाघाड कुशल १० लिखी है । पर ताराचन्द का जन्म इनके बाद ही होना चाहिये ।

साथ पांच सौ सैनिक थे ।¹ प्रताप की दृष्टि में ये दोनों वैश्ववधु पर्याप्त उच्च स्थान प्राप्त कर चुके थे अतः इन्हें सेना के एक पक्ष का नेतृत्व सौंपा गया था, इन वीरों को सम्मान देते हुए इन्हें हरावल के दक्षिण बाहु में रखा गया था ।

युद्ध के प्रारम्भिक काल में ही महाराणा की सेना के दाहिने बाहु ने मुगल-सेना के बायें बाहु पर जोरदार हमला किया और उसे छिन भिन कर दिया। यह आक्रमण इतना प्रबल था कि मुगल सेना पीछे मुड़कर १०-१२ मील तक भागती रही । इसी समय मिहतरखा ने आकर बादशाह अकबर के आने की अप्वाह फना दी, जिससे हताश मुगल सेना में पुनः शक्ति-संचार हुआ । अतः यथा इस समय मुगल सेना की हार निश्चिन्त थी । मुगल सेना के बायें बाहु का नेतृत्व कर रहे सीकरी के शेखजादे और लूणकरण ने सयदल के साथ अपने स्थान से भागकर हरावल में से होते हुए अपनी सेना के दाहिने बाहु में जाकर शरण ली थी ।

तब, मुगल सेना के बायें बाहु के नायकों के भाग जाने पर राजा रामशाह तब और भामाशाह ताराचन्द भी अपने स्थान से हट गये और वे प्रताप के पास मध्य में आ गये ।² रामशाह तब के मारे जाने पर प्रताप पर मुगल सेना का दबाव बहुत बढ़ गया और वह चारों ओर से शत्रु दल से घिर गया । इसी बीच वह घायल हो गया । उसके घोड़े की टांग कट चुकी थी । ऐसी दशा में भी प्रताप युद्ध से हटना नहीं चाह रहा था । उसके प्राण सकट में देखकर बीदा माला ने उसका 'राज छत्र' छीन लिया तथा उसको ही प्रताप समझकर मुगल सैनिक उस पर टूट पड़े । इस समय "उसके (महाराणा प्रताप के) विश्वस्त अनुयायी ने लगाम पकड़कर उसक घोड़े का मुँह घुमा दिया और वे अपने घायल सरदार को अपनी सेना के पीछे भाग से घाटी के उस पार सुरक्षापूर्वक ले गये ।³ चूँकि इस समय भामाशाह और ताराचन्द ही प्रताप के इतने गिद थे अतः वे ही उसक विश्वस्त अनुयायी थे जो महाराणा प्रताप को युद्ध के क्षेत्र से बाहर सुरक्षित पहुँचाने में सफल हुए ।

इस प्रकार ताराचन्द ने अपने भाई के साथ हल्दीघाटी के प्रसिद्ध युद्ध में वीरतापूर्वक लड़कर पुनः अपने स्वामी की रक्षा का दायित्व निभाया ।

१ जदुनाथ सरकार, भारत का सय इतिहास, (हिंदी अनु.) पृ. ८९

२ जदुनाथ सरकार वही पृ. ८८-८९

३ जदुनाथ सरकार, वही पृ. ९२

इसके लिए भामाशाह जैसे विश्वसनीय व्यक्ति को 'प्रधान' बनाया उसी समय (सन १५७६ में) ताराचन्द को भी गोडवाड का हाकिम नियुक्त किया गया था। मारवाड की ओर से मुगलों के मेवाड पर आक्रमण रोकने के लिए नाकाबंदी करने की दृष्टि से गोडवाड की सुरक्षा का जिम्मा ताराचन्द जैसे वीर और कुशल व्यक्ति को सौंपना युक्तियुक्त था।

शाहजाहशाह गोडवाड में ही दो वर्ष तक शरण करता रहा, परन्तु कुभलगढ पर विजय प्राप्त नहीं कर सका। उस समय ताराचन्द ने ही उसका तीव्र प्रतिरोध किया। अंत में विस १६३५ (१५७८ ई.) में शाहजाहशाह कुभलगढ पर पूर्ण अधिकार करने में सफल हो सका वह भी धोखे और भक्तारी से। गोडवाड पर फिर भी वह पूर्ण आधिपत्य नहीं जमा सका, क्योंकि इसके बाद भी ताराचन्द ही गोडवाड का गवर्नर बना रहा स १६४२ में सादडी में उसके आदेश से जैन कवि हेमरतन ने गौरा बादल पद्मिनी चौपाई की रचना की थी।

मालवे को लूट

जून १५७८ ई० में कुभलगढ पर मुगल बादशाह अकबर के सेनानायक शाहजाहशाह का अधिकार हो गया। उससे पूर्व ही महाराणा प्रतापसिंह पवतीय मार्ग से होकर राणपुर पहुँचे और वहाँ से ईडर राज्य के चूलिया नामक ग्राम में चल गये। महाराणा की आज्ञा से उसका प्रधान भामाशाह कुभलगढ की प्रजा को लेकर मालवे में रामपुरा की ओर गया। ताराचन्द भी उसके साथ था। वहाँ के राव दुर्गा ने उनकी बड़ी भावभंगत की और सुरक्षा प्रदान की।¹

इसी वर्ष भामाशाह और ताराचन्द ने अकबर के सूबे मालवे को लूटा तथा वहाँ से दण्डस्वरूप २५ लाख रुपये और बीस हजार अशकियाँ वसूल की। यह सारा धन उन दोनों ने ले जाकर चूलिया में महाराणा प्रताप को भेंट किया।² इस धन से महाराणा प्रताप को पुनः सैन्य संगठित करने में अत्यंत सहायता मिली। इस सहयोग के लिए महाराणा ने इन दोनों भाईयों की बड़ी खातिर की।

कुछ समय बाद महाराणा प्रताप ने दिवेर के शाही घाने पर आक्रमण किया। इस अवसर पर भामाशाह अपने साथियों के साथ सम्मिलित हुआ। ताराचन्द भी उसके साथ था। दोनों भाईयों ने बड़ी वीरता दिखाई। मुगल

१ वीरविनोद, भाग २, पृ १५७

२ वही पृ १५७

यानेशर सुल्तानखी मारा गया । धान के अरु य लोग भाग गये । दिवेर की घाटी पर अधिकार करके गोडवाड की ओर जाने वाले रास्ते को महाराणा ने पूर्ण सुरक्षित बना लिया ।

मालवे पर दूसरा अभियान

महाराणा प्रताप की आज्ञा से १५८० ई० के लगभग ताराचन्द मालवे में मद-सौर की ओर गया । वह दुबारा मालवे की हूटमा चाहता था, मुस्लिम सेनापति शाहवाजखा को इसकी सूचना मिलन पर उसने ताराचन्द का पीछा किया । शाह-वाजखा तीतरोंद परगने से होते हुए चम्बल के किनारे ताराचन्द को घेर लिया । ताराचन्द वहाँ से युद्ध करता हुआ बसी के पास तक पहुँच गया, वहाँ वह घायल होने के कारण बेहोश होकर घाड़े से गिर पडा । परंतु रणीजा (बसी) का राबि साइनास देवडा उसे घायल और बेहोश अवस्था में वहाँ से उठाकर अपने किले में ले गया ^१ जहाँ उसका उपचार कराया गया और वह स्वस्थ हो गया ।

शाहवाजखा तो दूसरी ओर चला गया उसे बिना ताराचन्द को पकड़े लौट जाना पडा । जब ताराचन्द के घायल होने का समाचार महाराणा प्रताप ने सुना तो वह से चावड सेना सहित चला । उसने मालवे में दणोर आदि शाही धानों को नष्ट किया और वहाँ से दण्ड बसूल किया । फिर बसी जाकर साइदास के प्रति प्रताप ने बड़ी वृत्तज्ञता प्रकट की और ताराचन्द को अपने साथ लेकर पुनः चावड लौट आया । इससे प्रकट होता है कि राणा प्रताप को ताराचन्द के प्रति गहरा विश्वास, आभिरुचि और प्रेम था ।

धर्म-प्रचार

ताराचन्द जनमत के अतगत लुकागच्छ का अनुनायी था । उसने लुकागच्छ के प्रसार-प्रचार के लिए अपने जीवन में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किया । लुकागच्छ की संहिता में लिखी 'पट्टावली' से पात होता है कि ताराचन्द ने सादरों के अतिरिक्त अनेक स्थान पुर और धामों में पीपघशालियाँ आदि बनवाय । उसने अनेक लोगों को प्रचुर धन और प्रलीभन दकर अपने गण (गच्छ) में शामिल कर लिया था ।^२

१ धीरविठ्ठल भाग २ पृ १५८

२ "ताराचन्द्रेण सादरों नामकनगरं स्थापितं सत्रं पीपघशालादिभानि स्थानानि करिठानि स्थाने स्थान पुरे पुरे धामे धामे बहुजनैभ्यो धनं दायं दाय स्वगणीया वृता ।" (नागपुरीय लुकागच्छ पट्टावली) ।

कहते हैं ताराचंद ने लुकागच्छ के प्रचार के लिए बाइ बसर नहीं छोड़ी। श्री रत्नप्रभाकर पानपुष्पमाला फलोदी से स १९८५ में "श्री जन श्वेताम्बर मूर्तिपूजन गोडवाड और सादडी लुकामतियों के मतभेद का दिग्दर्शन' नामा पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में यह भा लिखा है—

‘जिस बावडी पर ताराचंद की बटख थी उसी बावडी पर ताराचंद, उनकी औरता, दासिया और घोड़ी की मूर्तिया बनाकर वि स १६४८ वैशाख कृष्ण ९ की प्रतिष्ठा करायी गयी थी। आज भी लुकामत वाले उन मूर्तिया की वेशर चंदन से पूजन व भगी रचना करते हैं सदैव व ई जाकर दर्शन करत हैं। लोको के साधु साधवियां भा वहा दर्शन करने को जाते हैं। लुकाम कोई दीक्षा हो तो पहले ताराचंद के वहां जात हैं। तपश्चर्या हो गाजा बाजा के साथ बहुत लोग वहा जाया करते हैं। इतना ही नहीं, ताराचंद की मूर्ति को लुका एक तीर्थ समझते हैं।’^१

इस प्रकार ताराचंद ने लुकागच्छ के प्रचार में बड़ा योगदान किया। उनके इन कार्यों से वह लुकागच्छ में बहुत प्रतिष्ठित माना जाने लगा। सादडी में उसका निवास स्थान इस गच्छ के अनुयायियों के लिए एक तीर्थ बन गया, यह भायता वहा अब तक प्रचलित है।

कला और साहित्य के प्रति अभिरुचि

ताराचंद की स्थापत्य, संगीत और साहित्य की और गहरी अभिरुचि थी। उसने अनेक स्थानों पर लुकागच्छ की पीपयशालाओं का निर्माण कराया। गोडवाड का हाकिम बनने पर उसने सादडी में अपने रहने के भवन बनवाये जिसे 'रावसा' कहा जाता है। सादडी नगर की सुरक्षा के लिए परकोट का निर्माण कराया। इसानगर में उसने एक विशाल 'जन उपाश्रय का भी निर्माण करवाया था जिसका अब श्वेत सगमरमर के पापाणों से जिर्णोद्धार किया जा चुका है और जिस अब 'महावीर भवन' कहते हैं। इस उपाश्रय में ताराचंद की सगमरमर की बनी एक छत्री-विद्यमान है। सबसे महत्वपूर्ण उसके द्वारा अपने नाम पर बनवायी हुई 'ताराबावडी' नामक कलात्मक विशाल बावडी और बारादरी है। तीर्थस्वल्प यह बावडी ताराचंद का अमर स्मारक बन गया है।^२

१ बीरशासन, १६ दिसंबर १९५२, पृ ७ पर उद्धृत।

२ श्रेयास श्रीताराबाविनामक तीर्थ चरित (सादडी के ताराबावडी का लेख स १६५४, पक्ति १५)

ताराबावडी-

राजस्थान में विज्ञान बावडियों के बनाने की बहुत प्राचीन परम्परा रही है। इनमें कई खण्ड होते थे। बावडिया कई मजिला में बनायी जाती थी। इन मजिला पर बैठना के स्थान भी होत। इन्हीं स्थानों पर निर्माता या समाज के प्रतिष्ठित लोग बठ कर वतानुबूदन का आनन्द लेत थ। ग्रीष्मकाल में ये बावडिया सुखद जपवायु का स्थान होना थी। ताराचद के द्वारा निर्मित बावडी में भी उमड़े बठने का स्थान दशाया है।

ताराचद ने सादडी के बाहर एक बारादरी धीर बावडी बनवाई थी। यद्यपि इस बावडी का निर्माण काम बहुत कुछ ताराचद के बाल में ही हो चुका था पर तु इसके उसके पुत्र सुरताण' ने पूरा करवाया था। इसकी प्रतिष्ठा स १६५४ (शक संवत् १५२०) वैशाख कृष्ण २ गुरुवार के दिन हुई थी। इस अवसर पर एक गालीस बावडी के साथी धार दीवार में लगवाया गया था। इस लेख से ज्ञात होता है कि ताराचद धीर उसके साथ सती होने वाली ग्यारह स्त्रियों के पुत्र्य हेतु बावडी-रूप इस तीर्थ की ताराचद के पुत्र सुरताण द्वारा प्रतिष्ठा करायी गई थी। कुछ समय पूर्व बावडी का जीर्णोद्धार करान समय इस लेख की ब्रह्मा से हटा दिया गया है। इस लेख की छाप के आधार पर रामवल्लभ सोमानी ने इसे प्रकाशित कराया था।¹

यह बावडी पांच मजिल में निर्मित है। इसमें दो धीर से नीचे उतरने के लिए साडिया बनी हुई हैं जो नीचे जाकर एक हो जाती हैं। दाना धार की सीडिया के बीच में दो मजिलों में दो 'महामंडप' बने हुए हैं। यह बावडी स्थापत्य का उ कृष्ट नमूना है। बावडी के ऊपर ताराचद की छत्री बनी हुई है। बावडी पर विशाल रहट लगा हुआ है जिसके द्वारा समीपवर्ती बाडी में जल-निचन किया जाता था। अब इस रहट वाले स्थान को टिन की शीटों के भवन से ढक दिया गया है। पानी की गलियाँ अब तक मौजूद हैं। बावडी के निर्माण में स्थानीय मटमले लाल पत्थर का ही उपयोग हुआ है। यद्यपि पहले यह बावडी सादडी नगर में बाहर थी परंतु अब नगर के अंदर आ गयी है।

ताराचद संगीत का अच्छा पारखी था। मुगला की शली पर उसका दरबार ठाट बाट स लगा करता था जिसमें संगीत और नृत्य गीत आदि

के आयोजन भी हुआ करते थे। उसके आश्रय में कई संगीतज्ञ गायक और नतक और नतकिया रहते थे। उसके आश्रयण और व्यक्तित्व प्रभाव के कारण ही उसकी मृत्यु के बाद उसकी बिना म बँठकर छ गायिकाया, एक गायक और उस की स्त्री ने अपने प्राणोत्सग किये थ। यह उस कता प्रेमी और कला के उत्तर-मना आश्रयदाता के लिए विश्व म सबसे बड़ी श्रद्धांजलि थी, जिसे उन कलानु-नुरागियो ने अपने प्राणों की आहुतिया देकर पूरा की थी।

ताराचन्द साहित्य प्रेमी था। मेवाड मुगल षषय के उस भीषणकाल म भी साहित्य और कलाप्रो की प्रोत्साहन देना एक महत्वपूर्ण काम थी। अनेक कवि, साहित्यकार उदार हृदय से उसके यहाँ आत, ठहरते आश्रय पात अपनी रचनाए करते, उसे सुनाते और योग्यतानुसार पुरस्कार प्राप्त करते थे। उसके बाल म सादडी मे हेमरतन नामक एक जन मुनि का निवास रहा, वह उच्चशक्ति का कवि भी था। वह श्वेताम्बर पुनमिया गच्छ का वाचक था। उसका सपक तारा चन्द के साथ हीना स्वाभाविक था। ताराचन्द की भवाड के राजवश के प्रतिभूट आस्था थी। उस बाल म चित्तौड की पद्मिनी की कथा राजस्थान और उसके सीमावर्ती प्रदेशो मालवा और गुजरात मे सत्र विन्यात थी। न केवल यही अपितु मुद्गर पूष मे भी उसकी कथा प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। रानो पद्मिनी के त्याग और बलिदान की गाथा को आधार बनाकर हा मसिक माहम्मद जायसी ने दोहा चौपाई छदों मे 'पदमावत की रचना की थी। ताराचन्द ने हेमरतन सूरि की कवित्वशक्ति स प्रभावित होकर उससे पद्मिनी सबघो गौरवपूर्ण कथानक की राजस्थानी काव्य बाणी मे निबद्ध करन का अनुरोध किया। तदनुसार कवि हेमरतनसूरि ने आरण गुबल ५ वि स १६८८ को सादडी म इस सुन्दर रचना को पूरा किया और इस कृति का नाम रया गया 'गोरा-बानल पद्मिनी चौपाई'।¹ इसमे गोरा बानल की स्वामाभक्ति और उसके दारु चित्तौड के गौरव की रना हेतु अपने बलिदान का वणन ओजपूर्ण शब्दा मे किया गया है। इसकी रचना सादडी नगर मे की गई उस समय मेवाड के महागणा प्रताप का गाडवाड पर आधिपत्य था। उसके शौर्य और वीरता त्याग के काय दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे थे।

इस प्रकार ताराचन्द को संगीत स्थापय और साहित्य से अत्यत अनुगम

१ इस ग्रंथ की मूल हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर शाखा के देराश्री सग्रह म विद्यमान है, जिसके आधार पर इसका रा प्रा वि प्रतिष्ठान जोधपुर से प्रकाशन किया जा चुका है।

था। वह इन ललित कलाओं की विशिष्ट सूक्ष्मतम जानकारी भी रखता था तथा कलाकारों और साहित्यकारों को प्रोत्साहन व आश्रय प्रदान किया करता था।

मृत्यु

ताराचन्द की मृत्यु वशाख कृष्णा ९, वि स १६४८ (१५९१ ई) में हुई थी। महाराणा प्रताप की मृत्यु इसके छ वष बाद वि स १६५३ (१५९७ ई) में एक भामाशाह की मृत्यु वि स १६५६ (१६०० ई) हुई थी। इस प्रकार बहुत कम आयु में ही ताराचन्द की मृत्यु होना ज्ञात जाता है।

साण्डी में ताराचन्द की छत्री के पास उसकी चार स्त्रियों की मूर्तियाँ हैं। इसके अनिश्चित एक खास, ६ गायिकाएँ एक गवया और एक गवया की स्त्री की मूर्तियाँ भी खुदी हुई हैं। इन पर वि स १६४८ वशाख वदि ९ के लेख हैं।^१

मुन्नी देवीप्रसाद ने भी आन्वियोलोजिकल सर्वे के एक दौर के अवसर पर सादही के बाहर इस सतीबाड को देखा था जिसका उ होंने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया है।

'श्री जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक गोडवाड और सादही लु कामतियों के मत भेद का निदर्शन २' नामक पुस्तक में भी लिखा है जिस बावडी पर ताराचन्द की बैठक थी उसी बावडी पर ताराचन्द उनकी औरता दासियों और घोड़ी की मूर्तियाँ बनाकर वि स १६४८ वशाख कृष्णा ९ को प्रतिष्ठा करवायी गयी थी।

इसमें ज्ञात होता है कि पुराने साण्डी नगर के बाहर ताराचन्द के द्वारा बनवायी हुई बावडी के ऊपर ही उसकी दाहक्रिया की गयी थी, वही उसका स्मारक स्वरूप 'छत्री' और सतिया के मूर्ति उत्कीर्ण शिला-पट्ट लगवाये गये थे। ये शिलापट्ट अब छत्री का जीर्णोद्धार करते समय वहाँ से हटा दिये गये हैं, अतः उन पर अंकित स १६४८ के लेखों का भी पता नहीं चलता। उनके स्थान पर सवत २०१३ चत्र सुनि १० शुक्रवार को ताराचन्द की छत्री के अंदर सगमरमर

१ सरस्वती, भाग १८, हा २, पृ ९७ रामवल्लभ सोमानी, ऐतिहासिक घोष-समूह, पृ ६९

२ यह ग्रंथ 'श्री रत्नप्रभाकर पानपुष्पमाला' के अंतर्गत फलीदी (मारवाड) से स १९८५ में प्रकाशित हुआ था।

को एक बड़ी शिला, जिस पर मूर्तियाँ और लेख अंकित हैं स्थापित की गई है। इस शिला पर दो बतारों में मूर्तियों की सुदोई हुई है। ऊपर की पक्ति में ताराचन्द की अश्वारूढ़ मूर्ति के सामने हाथ जोड़े हुए पांच पत्तियों की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इनके नीचे तीन पत्तियों में ताराचन्द है। उसके नीचे मूर्तियों की दूसरी बतार में विभिन्न भगिमात्रों में नृत्य करती हुई छ गणिरामा (गतिरामों) की मूर्तियाँ सुदी हुई हैं। इनके नीचे लेख के शेष भाग की चार पत्तियाँ अंकित हैं। इन लेखों में पात होता है कि भारमल और उसके पुत्र ताराचन्द को ठाठुर कहा जाता था। भारमल की पत्नी भवाडी थी जिसका नाम इसी बावणी के प्रतिष्ठा लेख में 'कपूर देवी' दिया है। ताराचन्द के स्वर्गारोहण पर उसकी ५ पत्नियाँ यहाँ सती हुई थीं, जिनके नाम तारादे त्रिजवणदे, अमूरवदे सामागने और वीरागदे दी गये हैं। जो खवासन सती हुई थी उसका नाम केतकी दिया है। इनके साथ छ गणिकाएँ (ननकियाँ) भी चिता पर मार डेई थीं इनके नाम य- कामरेखा, गुणसूत्रदा, वसन्तमाला पूनमाला वीकीला और माहनी। इस लेख में उल्लेख है कि ताराचन्द की मृत्यु वि.स. १६४८ वशाख वृष्ण ८(९) मंगलवार को हुई थी तथा इस छत्री का निर्माण स. १६८९ वातिक सुदि ५ सामवार को पूरा हुआ था तथा छत्री का जीर्णोद्धार और नवीन मूर्तियों की स्थापना सन् २०१३ चत्र सुदि १०, शुक्रवार को हुई थी।^१ गांधी और उसकी स्त्री की मूर्तियाँ इसमें नहीं हैं। ताराचन्द की छत्री को आजकल ताराचन्द का मंदिर भी कहते हैं।^२

ताराबावडी के शिलालेख (स. १६५४) से भी पात होता है कि ताराचन्द के साथ ग्यारह स्त्रियाँ सती हुई थीं।^३

उसकी मृत्यु के समय में बनाया जाता है कि- ताराचन्द गोडवाड का हाकिम था, वह बड़े अमीराना ठाठ से सादर में रहता था। उसने कीर्तू नाम की एक खवासन घर में रख छोड़ी थी। वह बहुत सुंदर थी। महाराणा प्रतापसिंह के

१ यह लेख- देखें परिशिष्ट। इसका पृथक् से फोटोग्राफ भी मुद्रित है।

२ इस मंदिर के सम्बन्ध में विशेष धार्मिक मान्यता प्रचलित है। कावेडिया परिद्वारों का यह एक ही मंदिर है। यहाँ पर इनके बच्चों के मुंडन कराने (झड़ला उतारने) का रिवाज है। विवाह के बाद यहाँ पर जात दी जाता है। कई की यहाँ का 'प्लात पडता है' जैसे म्बन्धन धारि में दशन लेना भिन्नत पूरी होना आदि। कहते हैं ताराचन्द की दिव्यात्मा सादडी नगर में घूमती रहती है इसी से कभी यहाँ डकती (घाडायत) नहीं पडी।

३ ताराचन्दस्य एकादश सतीसहितसपुण्याथ (ताराबावडी का लेख, स. १६५४, पक्ति १४)

वटे भ्रमरसिंह ने उसकी इस सुदरता का वणन सुनकर उसे मांगा, तो ताराचंद न उसे न दिया। इस पर महाराणा ने उसे उदयपुर बुलवा कर मरवा डाला। नन्नूराम सेवक उसका गवया था। वह उसकी पगड़ी लेकर सादही में घाया। पगड़ी के साथ उसकी चारों ओरतें, खवासन कीतू, ६ गायिकाएँ, नन्नूराम और उसकी श्रोत, ताराचंद की एक पूफी, उसका पति और एक मुसलमान शीलिया कुल २० घातभी चिता बनाकर जल मरे। २१ वीं एक घोड़ों भी थी।^१

परन्तु यह विचार इतिहास-विशुद्ध है। ताराचंद की मृत्यु के समय महाराणा प्रताप का शासनकाल था अतः महाराणा भ्रमरसिंह द्वारा कीतू नामक खवासन को चाहने और उसे न देने पर उदयपुर बुलवाकर ताराचंद को मरवा डालने का कथानक कपोलकल्पित बात होता है।

सादही के ताराबावड़ी के स १६५४ के प्रतिष्ठा-शिलालेख को, जिसे ताराचंद के पुत्र सुरताण न सुनवाया था से भी पता होता है कि उस समय तक ताराचंद की मृत्यु हो चुकी थी। यह शिलालेख महाराणा भ्रमरसिंह की गद्दीन-शीनी के केवल तीस माह बाद का है। अतः महाराणा भ्रमरसिंह के गद्दी पर बैठने से पूर्व ही ताराचंद की मृत्यु होना प्रमाणित होता है।

ताराचंद की मृत्यु के समय भामाशाह मेवाड़ राज्य के 'प्रधान' के पद पर आसीन था और महाराणा भ्रमरसिंह के प्रारम्भिक काल तक इसी पद पर बना रहा। वह अपने भाई के अपमान और मार डाले जान को बस सहन कर सकता था ?

ताराचंद का मृत्यु के बाद भी कुछ पीढ़ियों तक उसके वंशज 'ठाकुर-साहव' ही कहलाते रहे अतः प्रतीत होता है कि उनके वंशजों के पास कुछ काल तक गोन्वाड़ की हाकिमी यथावत् चलता रही।

ताराचंद और साहसी योद्धा, कुशल प्रशासक और उत्तम प्रबंधक था। उसने अनेक सैनिक अभियानों का संचालन किया, गाढ़वाड़ की सुरक्षा और शासन प्रबन्ध करते हुए मेवाड़ की रक्षा में अपूर्व सहयोग दिया। इसके अतिरिक्त उसने कला व साहित्य को संरक्षण देकर उनको उत्थित में योगदान दिया। मेवाड़ के इतिहास में उसका स्थान महत्वपूर्ण और चिरस्थायी रहेगा इसमें कोई सन्देह नहीं।

१ मुन्शीजी द्वारा दिया गया यह विवरण वीरशासन क १६ दिमम्बर १९५२ के अंक में पृ ७ पर उद्धृत हुआ है।

५. भामाशाह के वंशज

जीवाशाह

'प्रधान' पद पाना

भामाशाह का पुत्र 'जीवाशाह' हुआ। उसका जन्म का नाम 'जीवराज' मिलता है। महाराणा अमरसिंह के शासनकाल में प्रारम्भिक ढाई तान वर्षों तक भामाशाह ही 'प्रधान' रहा। भामाशाह की मृत्यु माघ शुक्ल ११ स १६५६ (जनवरी १६०० ई) को हुई। उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने 'प्रधान' का पद प्रदान किया।^१ वह भी विश्वसनीय और योग्य व्यक्ति था।

सैन्य-सञ्चालन में सहयोग

डा. ओम्का ने लिखा है- वह अपना पिता की लिखी हुई वही के अनुसार जगह-जगह से खजाना निकाल कर लडाई का खर्च चलता रहा।^२

बादशाह जहागोर से भेंट

महाराणा अमरसिंह के समय फरवरी १६१५ ई में मुगल क साथ मघि हो गयी। यह संधि पूर्ण सम्मानजनक शर्तों के आधार पर की गई और मवाड के प्राचीन गौरव को अक्षुण्ण रखा। उस संधि के सम्पन्न होने के बाद शाहजादा खुरम के साथ कुवर कणसिंह अजमेर में मुगल बादशाह जहांगीर के दरबार में उपस्थित हुआ। उस समय खुरम की सिफारिश से बादशाह ने कणसिंह को दाहिनी ओर की पक्ति में सबसे प्रथम खड़ा रहने की आज्ञा दी। फिर उसको खिलसत और एक जडाऊ तलवार प्रदान की। इस अवसर पर कुवर कणसिंह के साथ प्रधान जीवाशाह भी अजमेर गया था।^३

जीवाशाह की मृत्यु महाराणा कणसिंह के शासनकाल में हुई वह मृत्यु पश्चात् 'प्रधान' बना रहा। महाराणा कणसिंह ने भी उसे अच्छा सम्मान दिया।

१ वीरविनाद, भाग २ पृ २५१

२ डा. ओम्का राजपूताने का इतिहास जिल्द २ पृ १३०३

३ वीरविनाद भाग २ पृ २११, ओम्का- 'राजपूताने का इतिहास', जिल्द २, पृ १३०४

श्रक्षयराज कावडिया

परिचार

मेवाह की क्पाता, बहियो धीर गीना म इमवा नाम 'मखीराज दिया है । वह भामाशाह का पौत्र धीर जावराज (या जीवाशाह) का पुत्र था । मखीराज की माता 'मोहोनी (सभवनया 'मोहोनी या माहनी) थी जो कमचदकी पुत्री थी । यह वही कमचद था जो 'कर्माशाह (कर्मसिंह) के नाम से प्रसिद्ध रहा धीर वह राणा रत्नसिंह (द्वितीय) के कान में मन्त्री के पद पर रहा ।¹ इस प्रकार मखीराज न मातृ धीर पितृ पक्ष की धीर से कुलीनता प्राप्त की थी धीर वह उनसे 'सवाया' निरना ।²

राज्य-सम्मान

महाराणा कमरसिंह ने श्रक्षयराज को देव एव प्रसन्न होकर उसे धीर उसने कुटुम्बियों की रेशमी धीर जरीन वस्त्र उपहार म दिये ।³

1 शत्रु जयन्तीय (सीराष्ट्र में पातोनाणा के पाम) से मिले एक शिनालेख म कर्माशाह द्वारा शत्रु जय का पुनर्गद्दार कर नवीन प्रतिष्ठा कराये जाने का विवरण प्राप्त होता है । इस लेख म इसने कमज का ध्यान भी दिया है । (एनिशाफिया इण्डिया भाग २, पृ ४७ ४८)

२ श्रक्षयराज का वक्त-परिचय एक प्राचीन गान में इस प्रकार मिलता है-

'सखो दवे पछ उत्रतो, सिरदार सवायो ।

जठ हयो जीवा बरे, जग सोमी जायो ॥

राणी धा मोहोनी धरा, त्रिण दू ध रहायो ।

दादा त्रिणुरो मापमाह, त्रिण दात शोहायो ॥

मानो त्रिणुरो त्रमचद कलि बन्त बहायो ।

त्रिणु पैतीमी धाकिमो, धाने जुग धायो ॥

धारे बहना धारण नीमालु बजायो ।

धो मन्तो उत्रवाल्ला, धामीरय धायो ॥'

(प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग 11, पृ ४५)

३ 'होती राणा कमरसिंह, दाने मुण पायो ।

पाट पटकर धम्बरा, परिणू पह्रायो ॥ (उरी पृ ४६)

प्रधान का पद

महाराणा अमरसिंह की मृत्यु (२६ जनवरी १६२० ई०) के बाद उसका पुत्र करणसिंह उदयपुर की गद्दी पर बैठा। मात्र १६२८ ई० में उसका देहान्त हो गया। उसने ८ वर्ष और ८ दिन राज्य किया। महाराणा करणसिंह ने अख राज को अपना प्रधान (मन्त्री) बनाया। उस सभी सामन्त चाहते थे। इस अवसर पर जब वह अपने घर आया तब उसका पत्नी ने मणि-मुक्तामयी के घाल भर कर उसकी बधाया (स्वागत किया)।^१ तब से वह महाराणा जगतसिंह के बालक तक इस पद पर बना रहा।

डूंगरपुर पर आक्रमण

अखराज के कार्यों में सबसे महत्वपूर्ण उसका डूंगरपुर पर आक्रमण और उसकी विजय कर पुनः उदयपुर लौटना है। उसके इस अभियान का सक्षिप्त विवरण जगन्नाथराय प्रशस्ति, राजप्रशस्ति एवं अमरकाव्य में मिलता है। परंतु इसका विस्तृत विवरण 'विदुर नामक चारण कवि द्वारा विरचित समकालीन एक गीत में दिया गया है।

डूंगरपुर का राजवंश मेवाड़ के राजवंश से सम्बंधित था। अतः जब १५७६ ई० में डूंगरपुर के रावल भासकरण ने मुगल बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली तो इस समाचार को सुनकर महाराणा प्रतापसिंह को क्रोध आया और डूंगरपुर पर आधिपत्य करने के लिए १५७८ ई० के लगभग उसने रावल भाण सारंगवान (बानोड बागो का पूवज) को सैन्य सहित भेजा। सोम नदी के किनारे दोनों पक्षा में युद्ध हुआ। इसमें रावल भाग स्वयं बहुत घायल हो गया और उसका काका करणसिंह मारा गया। इसमें वागडिये चौहानी ने बहुत वारता दिखाई, परंतु वे हारकर भाग गये। डूंगरपुर के शासन में महाराणा की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

महाराणा अमरसिंह और मुगल बादशाह जहांगीर के मध्य ५ फरवरी १६१५ ई० की संधि हो गयी। इस संधि के बाद 11 मई १६१५ को एक फरमान द्वारा बादशाह ने मेवाड़ के सारे प्रदेश, चित्तौड़ का किला तथा मेवाड़ के अधीन पूव के सारे इलाक तथा फूर्निया रतलाम बासवाड़ा, डूंगरपुर, जीरन, १ दे परधानो करणसिंह, भुजभार भठायो।

भूप भ्रूपा ठाकरा सगला मन भायो ॥

बिणता मिलता मोतिया, भरि घाल बघायो।

साह चरे आयो सभा, दणियर, दरसायो ॥

(वही, पृ ४६)

नीमत्र, अरनोद आदि बाहरके परगने भी कु वरकणसिंह को जागीर में दे दिये।¹

महाराणा जगत्सिंह ने राजगद्दी प्राप्त करते ही उसी वष डू गरपुर पर अधिकार करने के लिए अपने मंत्री अक्षयराज को सेना सहित भेजा । इसके कारण की मीमांसा करते हुए डा गीरीशकर हीराचंद घोषा का मत है- "महाराणा प्रतापसिंह के समय से ही डू गरपुर बादशाही अधीनता में चला गया था, जिससे वहा के रावल उदयपुर की अधीनता नहीं मानते थे । इसलिए महाराणा ने अपने मंत्री अक्षयराज को सेना देकर रावल पूजा पर, जो उस समय डू गरपुर का स्वामी था भेजा ।"²

महाराणा कणसिंह का राज्यकाल प्राय अपने उजड़े हुए राज्य को अबाध करने में ही व्यतीत हुआ । इसलिए उसने डू गरपुर आदि से कोई छेड़-छाड़ नहीं की परन्तु उसके पुत्र महाराणा जगत्सिंह ने शाही फरमान के अनुसार डू गरपुर बासवाडा और देवतिया को अपने अधीन करने की चेष्टा की, किन्तु उक्त राज्यों ने मेवाड के अधीन रहना नापसंद किया । इस अवसर पर महाराणा ने अपने मंत्री अक्षयराज कावडिया को सेना सहित डू गरपुर पर भेजा ।³

इस राजनतिक कारण के अतिरिक्त तात्कालिक कारण भी थे, जिनसे क्रुद्ध होकर महाराणा ने रावल पूजा के विरुद्ध सेना भेजी । इसका संकेत 'विदुर' वृत्त एक प्राचीन गीत में इस प्रकार मिलता है । जब महाराणा कणसिंह का देहांत हुआ और उसका पुत्र जगत्सिंह राजगद्दी पर बठा तब रिवाज के अनुसार मेवाड के सभी सामंत एवं अधीन राजा राजतिलक के अवसर पर राजदरवार में उपस्थित हुए और नजराना पेश किया । इस अवसर पर स्वयं डू गरपुर के रावल पूजा ने महाराणा के विरुद्ध ऐसे आचरण किये जिससे महाराणा का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था । इस संबंध में विदुर ने अपने राजस्थानी गीत में निम्न पांच बातों का उल्लेख किया है-

- १ रावल पूजा सभी सामंतों के आने के बाद उन्पपुर आया ।
- २ महाराणा जगत्सिंह के राजतिलक के समय भेंट करने के लिए मणि माणक हीरे, रत्नादि कुछ भी साथ नहीं लाया ।
- ३ उसने उदयपुर नगर के पास पूंच कर नव्वारे बजवाए । (नव्वारे का बज-

१ यह फरमान 'वीरविनोद' भाग २ पृ २३९ से २४९ पर छपा है ।

२ डॉ घोषा 'राजपूताने का इतिहास', जिल्द २ पृ ८३३

३ डॉ घोषा, 'डू गरपुर राज्य का इतिहास' पृ १०८

वाना उसकी स्वतंत्र शासक के रूप में सत्ता को प्रकट करने के लिए था) ।

४ राणा की सभा में रावल पूजा बिना बाने ही अभिमानपूर्वक सामने आकर बैठ गया ।

५ रावल पूजा राणा की सभा में से शीघ्र उठकर रवाना हो गया ।¹

राणा ने उसके इस प्रकार के व्यवहार को उद्दण्डतापूर्ण माना और शोधित होकर उससे 'दण्ड' की मांग की । वह राजद्वार तक भी नहीं पहुँचा था कि उससे कहा गया कि वह दण्ड दिये बिना अपना स्थान डूंगरपुर नहीं जा सकता। इस पर पूजा ने क्रुद्ध होकर पून कहलाया- मेरा प्राप्त अलग है । रावल और राणा वश दोनों का एक ही घर है । फिर भी हमारा वश बड़ा माना जाता है । यदि हमसे कोई बुरा काय हुआ हो तो उस पर विचार पूचक जाच करें । अपने ही घर में मनमानी करना यथ है । दण्ड लेना ही तो साम नदी पार कर मरे देश में आँखें तब पता चल जावेगा । यह कहलाकर पूजा न विदा के वाद्य नक्कारे बजवाये और रवाना हो गया ।

इस आचरण से स्पष्ट हो गया कि डूंगरपुर का शासक मुगलों से स्वतंत्र मनसब प्राप्त करके अपने को मेवाड़ की प्रभारता में पृथक मान बैठा था ।

महाराणा ने अपनी सेना डूंगरपुर पर अधिकार करने के लिए सुमजिजत कर भजी । उसे आदेश दिया गया कि वह 'नेफमागर' पर अपना घाना कायम करे और रावल से १२ वष का दण्ड वसूल करे ।

उस समय घीष्म ऋतु थी । रावल भी इस प्रत्याशित आक्रमण से परिचित था । उसने अपने राज्य के माग में आन वाले गावों को खाली करवा दिया। उसकी प्रजा पहाडा और जगला में जा बसा ।

राणा की सेना में गज्जारोही अशवारोही और पदल सनिक थे । इस अभियान का नेतृत्व महाराणा जगतसिंह ने अश्वराज कावडिया की सौपा । उसके साथ भेजी हुई सेना में शवसावत चूडावत सोनगरे सिधल सोलरी राठीड और चौहान वीर थे । इस सेना में कई प्रमुख सरदार भी साथ भेजे ग जिनमें जमसेनका पुत्र रामसिंह (मुड, कौडा से हाथी का मारने वाला) गोपालदास का पुत्र किसनदास रावत मानसिंह क हा भाला शामसिंह का पुत्र माघीसिंह (महाराणा की चित्तौड पर स्थ पित करने वाला) इश्वरदान (दूदा का बलज), राठीड सावलदास नरहरदास का पुत्र जसव नसिंह, परभार इद्रमान, मानसिंह जस

१ प्राचीन राजस्थानी गीत, भाग ११ पृ ५३ ५४ (पद्य में ८)

व तसिंह बछवाहा किसनसिंह का पुत्र वेरीगाल (वेरीसि), भाटी उदा(उज्जैतसिंह), राठौर मुन्दरदास उल्लेखनीय थे ।

अक्षयराज की सेना के 'हरावता' (सेना के अग्रभाग) ने माग म अनेक स्थानों को उजाड़ दिया और घाना पर बढा कर लिया । फिर वह सोम नदी के किनारे पहुँचा । इसका समाचार सुनकर रावल पूजा और उमका वागड प्राप्त चिंतित हो गया । बोड़ भी उसका साथ दन का तैयार नही हुआ । केवल चौहान सूजा (मूरजमल-सूयमल्ल) अपने गिने चुने चौहान वीरो के साथ रावल पूजा का पक्ष लेकर महाराणा की सना का मुकाबला करने सोम नदी के तट पर पहुँचा । जब जब डू गरपुर पर बाहरी आक्रमण हुआ तब-तब वहाँ के चौहानों ने रावल का साथ लिया और वे आग बढकर शत्रु-सेना से लडे । इस बार भी जब राणा की सेना ने आक्रमण किया तो चौहान सूजा आगे बढा । युद्ध म लालसिंह का पुत्र भाए मारा गया । जब सूजा ने सुना कि उसके पक्ष का पृथ्वीराज युद्ध म मारा गया है, तब वह स्वयं आग बढा । युद्ध में रावल मानसिंह के साथ सूजा का मामना हुआ । रावल मानसिंह ने सूजा की छाती में कटार भोक दी । पृथ्वा पर गिरते गिरते भी सूजा ने दाब लगाकर दामोदर नामक व्यक्ति को मार गिराया । सूजा के मरने के बाद उसके पाच-दस वीरो ने सामना किया वे सभी मारे गये ।

सोम नदी पर हुए इस युद्ध में विजयी होकर महाराणा की सना आग बढी। डू गरपुर पहुँच कर उछे चारा और से घेर लिया । अक्षयराज ने अच्छा सँ य संचालन किया । रावल पूजा भी नौली नामक स्थान पर आ डटा । उस समय अक्षयराज की बढूक की गोली से पूजा के सिर पर आघात हुआ । वह टिक नही सका और भाग खडा हुआ । वह भागकर मदद के लिए मुगल बादशाह की सेवा म चला गया । शत्रुदल के कुछ वीरों ने सामना किया पर वे सब शीघ्र ही मार डाले गये ।

मेवाड की सेना ने डू गरपुर पर अधिकार कर लिया । डू गरपुर को लूटा गया, वहा के दरवाज बाजार ऊँचे भवन गिरा दिये गये, मकानों में आग लगा दी गई खमा को काला कर दिया गया, बाग-बगीचे-वृक्ष नष्ट कर दिय गये । इसके बाद महाराणा की सेना ने 'नेफसागर' पर डेरा डालकर विश्राम किया ।

इसके बाद महाराणा का मंत्री अक्षयराज डू गरपुर के प्रदेश को अपने अधीन कर वापिस उदयपुर लौट आया । 1

रणछोड भट्ट ने अमरकाव्य' से लिखा है कि यह आक्रमण सन्त १६८५ (१६२८ ई) में किया गया था । इस अवसर पर रावल पूजा अपने सोमा के साथ पहाडो म भाग गया । अखराज की सना न डू गरपुर को लूटा और रावल के महल मे लगा हुआ चन्दन का गोखडा' गिराकर उसे साथ ले लिया । एसा ही वणन सक्षेप में 'राजप्रशस्ति' और 'अण नापराय प्रशस्ति' म भी मिलता है । 2

१ डू गरपुर अभियान का यह वणन विदुर नामक चारण कवि ने भूलणा' नामक २५ पद्यो में लिखा है। इस गीत की प्रति का लिपिकाल स १७७१ आश्विन शुक्ला दिया है । लिपिकार का नाम 'रायचन्द पचोली' लिखा है । यह प्रति रवि-शंकर नेराथी (बनडा) के संग्रह म उपलब्ध हुई थी जिमका सम्पादन प्रकाशन 'प्राचीन राजस्थानी गीत भाग ११, पृ ४२-७५ पर कविराय मोहनसिंह और सावलदान भाशिया ने किया है ।

२ (घ) अगत्सिहानया मत्री अखैराजो बलाधित ।

स डू गरपुरप्राप्त पु जानामाय रावल ।

पलायित पातित तच्चन्दनस्य गवाक्षक ।

लु टन डू गरपुरे वृत लोकरल तत ॥

(रा प्र संग ५/१८-१९)

(घा) शते भवति षोडशेऽग्रयुते पचकाशीति समिताब्दे ।

अखराज मत्री वणिक स डू गरपुरे गत ॥

प्रबलसयमालावृत पलायनपरोऽभूवत् ।

तदनु पुञ्जनामा नृपमर्तविक्रटविक्रम ॥

अखैराजवाक्प्रेरितभटा युधि विखण्डिता ।

प्रबलरावलस्योदभगा विलुण्ठनमहोक्तम् ॥

पुरवरस्य लोकरल सचन्दनगवाक्षक ।

सकलमुदवेस वेगत विघातो जगत्सिंह ॥

सत्पालाञ्जनतिसुख तदनु तस्य चक्रे चिरम् ।

ॐ

॥

(अमरकाव्यम् २०।५-१९)*

‘मन्त्री ब्रह्मराज कावडिया की इस सफलता से महाराणा जगतसिंह बहुत प्रसन्न हुआ। संभवतः ब्रह्मराज का जीवन मृत्युपर्यन्त ‘मन्त्री’ पद पर कायम रहा।

भामाशाह के परवर्ती वंशजों को राज्य

सम्मान और जातीय सम्मान

भारमल्ल, भामाशाह, जीवाशाह और ब्रह्मराज - इस प्रकार एक ही वंश की चार पीढ़ियाँ ने मेवाड़ राज्य की महान् सेवा की। विशेषकर भामाशाह की सवाघों से मेवाड़ में युग परिवर्तन हुआ। चेतना की लहर प्रवाहित हुई और महाराणा प्रताप की अपने सघन को जारी रखने तथा शांतिकाल में मेवाड़ में व्यवस्था स्थापित करने में अदभुत सहायता मिली। कविराजा श्यामलदास ने ठीक ही लिखा है-

“भामाशाह के नाम से भोमवाल जात के हर एक महाजन को घमंड होता है, जिस तरह वस्तुपाल, तेजपाल जो भ्रूलवाड़े के सोलखी राजाघों के प्रधान थे, और जिन्होंने भ्रावू पर जन के मंदिर बनवाये, वैसा ही पराक्रमी और नामो भामाशाह को भी जानना चाहिये, जिसकी मौकरी के एवज में वतमान समय तक उसकी भौलाड के कावडिये महाजन महाजनों के बड़े जल्सा में सबसे पहिले पशानी पर तिलक पाते हैं। मग उन लोगो में कोई मशहूर भ्रादमी नहीं रहा, तो भी भामाशाह का नाम कुल मुल्क में मशहूर है।”¹

भामाशाह के वंशज उनके पूर्वजों की मेवाड़ राज्य एवं जाति के प्रति सेवाओं की देखकर भोमवाल जाति में सबसे प्रतिष्ठित माने गये। जब कभी जाति-समूह का भोजन आदि सामूहिक कार्य होते तब सबसे पहले इस वंश की पुरुष को

* (इ) देशे बाण्डनामके नरपति श्रीपु जराजोजनि

श्रीमद्भु गरपूवकस्य नगरस्याधीश्वरो दुजय ।

केनाप्यत्र न निर्जितो व(ब)हुमति सत्कोपवास्त

पुनय मन्त्री वृतवान् पराङ्मुखमहो दग्ध पुर चाकरोत् ॥

(जगन्नाथराय प्रशस्ति, शिला १, श्लो ५४)

यहां मन्त्री का नाम नहीं दिया है।

सबप्रथम तिलक करन का रिवाज बन गया था। परंतु बाद में जब उनके वंशजों के पास पद, प्रतिष्ठा, धन और बभ्रव की कमी होगई तो रिरातरीक अर्थ प्रतिष्ठित लोगों को उनको प्रथम तिलक निकालने की बात अदरन लगी। काल की गति बड़ी विचित्र होती है। तब ओसवाल महाजना की पचासत न इस नियमको भंग कर दिया। इस सम्बन्ध में जब महाराणा स्वरूपसिंह को निवेदन किया गया तब महाराणा के आदेश से उनके पूवजों को निष्ठा और सेवा को पुन याद करते हुए आदेश जारी किया गया कि ओमवालों को जाति में बावनी (संपूर्ण जाति का भोजन), चौके का भोजन और 'सिंहपूजा' के अवसर पर भाभाणाह के मुख्य वंशज को प्रथम तिलक निकाला जाय। इस सम्बन्ध में एक परवाना महाराणा स्वरूपसिंह ने विस १९१२ (चत्रादि १९१३) ज्येष्ठ सुदि १५ (१८५६ई) को जयचंद, कुंदन और वीरचंद इन तीन भाईयों के नाम कर दिया।^१ तब से पुन इनको जाति-सम्मान और तिलक निकालना प्रारम्भ हुआ। इस परवान के द्वारा जाति के पंचों को कावडिया दश के पारम्परिक सम्मान को अशुण्य और नियमित रखने का आदेश दिया गया।

शाह कुंदन के दो पुत्र हुए सवाईराम और अम्बालान। अम्बालान मेवाड के सरदार उमराव की वकालत का कार्य किया करता था। इसे भाडोल के तत्कालीन सरदार ने चोक्डी ग्राम जागीर में दिया था। शाह अम्बालाल के समय में ओसवाल जाति द्वारा पुन उनके वंशानुगत सम्मान के प्रति अपेक्षा की गयी। अतएव महाराणा फतहसिंह के काल में सबसे १९५२ कार्तिक सुदी १२ (१८-९५ई) को मुकुद्दमा फंसल होकर भाभाणाह के मुख्य वंशज को तिलक निकालने की आज्ञा जारी की गई।^२ शाह अम्बालाल का स्वगवास विस १९७६ में हुआ। इसके तीन पुत्र हुए- बहुललाल, अमरसिंह और मनोहरलाल। बहुललाल के दो पुत्र कालूलाल और छगनलाल हुए। कालूलाल वकालत का काम करता था तथा छगनलाल पुलिस विभाग में था। मनोहरलाल के दो पुत्र रोगरसिंह और जसवतलाल हुए।^३



१ यह परवाना- देखें परिशिष्ट

२ डा गौरीशंकर हाराचंद ओभा, 'राजपूताने का इतिहास', जिल्द २, पृ १३०४

३ ओसवाल जाति का इतिहास, पृ ७४

6. भामाशाह की पुत्री

‘जगौशा बाई’ का वंश

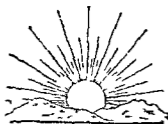
भामाशाह की एक पुत्री थी जिसका नाम जगौशा बाई मिलता है। इसका विवाह बीकानेर वं सुप्रसिद्ध बच्छावत परिवार के कमचंद के साथ हुआ था। कमचंद सग्राम का पुत्र था। इस वंश में प्रारंभ से ही सब लोग बीकानेर राज्य के मंत्री रहे। राव बीका ने जागल प्रदेश में बीकानेर की स्थापना की एवं अपने स्वतंत्र राज्य की नींव डाली। वत्सराज उसका मंत्री रहा। वह बहुत प्रसिद्ध हुआ। वत्सराज के वंशज बच्छावत मेहता कहलाये। इस वंश में वत्सराज का पुत्र कर्मसिंह राव गुणकरण का मंत्री बना। कर्मसिंह का छोटा भाई वरसिंह राव जतसिंह का मंत्री बन। उसके बाद वरसिंह का छोटा पुत्र नगराज भी राव जतसिंह का मंत्री रहा। जतसिंह के पुत्र राव कल्याणसिंह के काल में भी नगराज मंत्री रहा। नगराज का छोटा पुत्र सग्राम शेरशाह मूर के पास रहा। तीर्थयात्रा प्रसंग में चित्तौड़ आने पर सग्राम को महाराणा उदयसिंह ने सम्मानित किया था। सग्राम का पुत्र कमचंद हुआ, उसे राव कल्याणसिंह ने नगराज की मृत्यु के बाद अपना मंत्री बनाया। कल्याणसिंह के पुत्र राव रायसिंह के काल में भी कमचंद मंत्री पद पर बना रहा। किसी कारण से संभवतः रायसिंह को मारकर उसके पुत्र दनपत को गद्दी पर बिठाने के पड़यंत्र में कमचंद के सम्मिलित होने की भावना के कारण, राव रायसिंह इससे नाराज हो गया, तब वह परिवार सहित भकवर के दरबार में आकर रहने लगा। कमचंद की मृत्यु के बाद रायसिंह ने उसके दोनो बड़े पुत्र सोभागचंद्र और लक्ष्मीचंद्र को बीकानेर बुलवाकर मरवा डाला। “कमचंद की एक स्त्री जा भामाशाह की पुत्री थी अपने पुत्र भाण सहित उदयपुर में थी, जिसमें उसका वही पुत्र बचने पाया।”¹

भाण का पुत्र जीवराज, जीवराज का लालचंद और लालचंद का प्रपौत्र पृथ्वीराज हुआ। पृथ्वीराज के दो पुत्र हुए अमरचंद और हंसराज। अमरचंद

१ डॉ. भाभा, राजपूताना का इतिहास, जिल्द २, पृ. १३१४

की महागणा सरिसिंह ने मोंडलगढ का किलेदार नियुक्त किया था। तबसे दीर्घकाल तक उसके वंशजों के पास यह किलेदारी चली रही।

डा मोभा का मानना है कि- 'उदयपुर के मेहताधो की तवारीख में भाण की भोजराज का बेटा लिखा है। संभव है कि भोजराज या तो कमचद का तीसरा पुत्र हो या भागचद और लक्ष्मीचद में से किसी एक का पुत्र हो। यदि यह अनुमान ठीक ही तो भामाशाहकी पुत्री का विवाह भागचद या लक्ष्मीचद में से किसी एक के साथ होना मानना पड़ेगा।'^१



१ डा मोभा, 'राजपूताने का इतिहास' जिल्द २, पृ १३१८ पर पावेदियणी

7. परिशिष्ट

1 पुरालेखीय और साहित्यिक

प्रमाण-संग्रह

- 1 ताम्रपत्र
- 2 शिलालेख
- 3 परवाना
- 4 पट्टावली
- 5 साहित्यिक ग्रंथ

1. ताम्रपत्र

शाह भारमल की उपस्थिति में जारी
किये गये ताम्रपत्र

नदराय का ताम्रपत्र

श्रीरामजी

श्री गणसजी सुप्रसाद

श्रीऐकलजी सुप्रसाद

[भाला]

सही

- 1 ॥ सिद्ध श्री माहाराजिधिराज माहाराणा श्री श्री
- 2 उद्वस्यधजी आदेशातु पुय श्री आमण जोसी
- 3 हरदाउला रा न रो कली पुतर अरज कीधी गढ
- 4 चप्रकोट मह पुनि सुरज परव आमाव
- 5 स्या सोमोती मह उदक कीधो प्रगणा माडलग
- 6 ढ रै गाम नदराय मह हल ४ री घरती उदक
- 7 द धी बीघा ४५१ अपरे च्यारे सक अकवध
- 8 धीती धीगती
- 9 वाडी गरवो पीवरा माल तथा मगरा अपद
- 10 त प्रदत्त जे पालत वमघरा जे नरा अमरा पु—
- 11 र पोहाच तथ वलगन ददे वा घरा अपदत्त
- 12 प्रदत्तु जे लोपत वसघरा ते नरा नरका जायते
- 13 वलगन ददे वा करा दसकत साहा भार
- 14 मल रा मोती माह बढ ५५ सामे स १६१५

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागर उदयपुर में क्र १६८/१ पर सुरक्षित है। यह अप्रकाशित है।

इसमें ब्राह्मण जोशी हरदयाल के पुत्र द्वारा चित्रकूट (चित्तौड़) में निवेदन करने पर महाराणा उदयसिंह के आदेश से माडलगढ पराने के अतगत नदराय नामक ग्राम में ४ हल ४५१ बीघा घरती सवत १६१५, माघ वदी अभावस्या सोमवार के दिन दान में दी गई। इस पर शाह भारमल ने दस्तखत किये।

कमल्यावास का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्रीगणेशप्रसादात्

श्रीएकलिंगप्रसादात्

[भाला]

सही

- 1 महाराजाधिराज महाराणा श्री उदेस्यध आ
- 2 देशात् जोसी चडीदाम महेसाय लोम
- 3 कूरसा कस्य गाम १ कमल्यावास आघाटे
- 4 उदके दत्ता गाम ऐंदापेडी रे बदले दीधो
- 5 सवन १६२२ वर्षे मागसीर शु १५ दुऐ श्री
- 6 मुप वीदमान स्याह भारमल लीपत पचोली
- 7 गावघन स्वदत परदत वा यो हरती वसुधरा
- 8 पष्टी २ वज सहाराणो वीस्टाया जायते क्रम

इम ताम्रपत्र का फोटोग्राफ राजकीय अभिलखागार उदयपुर न सुरक्षित है। यह अबतक अप्रकाशित रहा है।

इम ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा उदेसिंह ने जोशी चडीदाम महेश व कमल्यावास नामक ग्राम दान में दिया था। यह गाम ऐंदासेडी के वजाय दिया गया था। इम ताम्रपत्र की सवत् 1622 मागशीप शुक्ल 15 के दिन शाह भारमल की उपाधि मिली म पचोली गोवघन न लिखा था।

भामाशाह की उपस्थिति में जारी किये गये ताम्रपत्र और परवाने

सथाराण का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गणेशप्रसादात्

श्री एकलिंगप्रसादात्

[भाला]

सही

- 1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रताप—
- 2 स्यध आदेशात् आचाय वानाजावा
- 3 कीस्तदास बलभद्र कस्य गाम १ मदा

- 4 एो मया कीघा उदके आघाटे दत। कू
- 5 भलमेर मध्ये सवत 1633 वपे भा
- 6 द्रवा शुदी 5 रोवा दुए श्री मुपे प्रतीदु
- 7 ए दादा रायजी साह भामा पहला प
- 8 तर वले गुयो लुट्या तठे गया सु नवो करे
- 9 मया दीघो साम पीपली वण हैडा पा
- 10 स पड सी सीम थी सुसाल सुधी दीघो

इस ताम्रपत्र का फोटोग्राफ राजस्थान अभिलेखागार कार्यालय उदयपुर में सुरक्षित है (फोटोग्राफ सं 26/133)। इसके अनुसार महाराणा प्रतापसिंह के पादेश से आचार्य बालाजीवा किशनदास बलभद्र को सथाणा नामक गांव भाद्रपद शुक्ल 5 सवत् 1633 रविवार (25 नवम्बर 1576 ई.) को दिया गया। इस भामाशाह न जारी किया। मूल ताम्रपत्र लुप्त गया था अतः यह नया बनाकर दिया गया।

सथाणा गांव काकराली रेलवे स्टेशन से 12 मील दूर स्थित है।

पीपली का ताम्रपत्र

श्री रामा जयति

॥ गणस प्रसादात् [श्री एकलिंग प्रसादात्]

[भाला]

सही

- 1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापस्य
- 2 घ आदशान आचार्य बालाजीवा कासनदा—
- 3 स बलभद्र कर्म्य गाम १ पीपली मया कीघा
- 4 उदके आघाटे दत। कूभलमेर मध्य स
- 5 वत् 1633 वप भाद्रवा शुदी 5 रोवा दुए
- 6 श्रीमुप प्रतीदुए दीदारायजी साह भामो
- 7 पहला पतर वले गुहा लुटयो तठ गया सु
- 8 नवा करे मया दीघा

स ताम्रपत्र का फोटोग्राफ राजस्थान अभिलेखागार उदयपुर में सुरक्षित है।

यह ताम्रपत्र जगन्निवासा आचार्य के पास है। इनका परिवार उदयपुर में आचार्यों की पीढ़ी जगदीश चीन में रहता है। इनके पास अब तक पीपली गांव

रहा, घन ये लोग 'पीपली के आचाय कहलाते हैं। ताम्रपत्र म कहा है कि महाराणा प्रतापसिंह ने कु भलगढ म रहत हुए आचाय वालाजीवा किसनदास बलभद्र का भाद्रपद शुक्ल 5 सवत् 1633 रविवार का पीपली नामक गाव दिया था। इस ताम्रपत्र को भामाशाह न जारी किया था। मूल ताम्रपत्र खा जान पर यह नया ताम्रपत्र बनाकर दिया गया।

यह विशेष द्रष्टव्य है कि आचार्य जगदीशप्रसाद के पास वाले ताम्रपत्र म जो महाराणा प्रताप स्मृतिप्रथम मे छपा है, तिथि सवत् 1633 भाद्रपद शुक्ल 11 रविवार दी है।

मही का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

[भाला]

सही

- 1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापस्यध
- 2 आदेशात् आचाय वालाजी वा कीसनदास
- 3 बलभद्र कस्य गाम महीम् । हेरहद 3 अग
- 4 री क व्हे सु मया कीधा दुइ उदक आघाट द—
- 5 त । सवत 1633 वर्षे आसोज वदी 6 भुमे
- 6 कूभलमेर मध्ये दुए श्रीमुपे प्रतीदुए
- 7 साह भामो पुर्वा रीत व्हे सु मया कीधो व
- 8 ले गुठो लुटयो त्ठ पतर गया था मु नव्या
- 9 करे मया कीधा

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलखागर उदयपुर म स 1288 पर सगृहीत है।

इस ताम्रपत्र की एक प्रति आचाय जगदीशप्रसाद जगदीश चौक, उदयपुर के पास है। इसमें बताया गया है कि महाराणा प्रतापसिंह ने कु भलगढ म रहने हुए आचाय वालाजी वा किसनदास बलभद्र का मही (मोही) नामक गाव म 3 रहत आश्विन कृष्ण 6 मंगलवार म 1633 की दिए थे। यह ताम्रपत्र शाह भामाशाह न जारी किया था। पहले महाराणा उदयोमह द्वारा ताम्रपत्र बनाकर दिया गया था वह लुट जाने पर पुन यह नया ताम्रपत्र बना कर दिया गया।

माही गाव काकरोली रेलवे स्टेशन से करीब 4 मील दूर है।

आटा ग्राम का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गणेशप्रसादात्

श्री एकलिंग प्रसादात्

[भाला]

सही

- 1 महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रताप
- 2 म्यघ आदेशात् प्रोहीत राम भगवा
- 3 न वासी वस्य गाम १ घोडा मया कीधा
- 4 उदके आघाट दत्त । पहली उदक रा
- 5 णा श्री उदेस्यघ रो था सु पतर गागुद क
- 6 टक आयो त दीम । दड । माह गयो सु पत
- 7 र नवा करे मया कीधो कुमलमेर मघे
- 8 म 1634 वर्षे मागसीर वदी 3 भुमे
- 9 दुए श्रीमुग्य प्रतीदुए माह भामा ली
- 10 पत पचाली जेता

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में न 879 पर नमूद है। मूल ताम्रपत्र अब तब भ्रष्टागिन रहा है, इसका हिन्दी सार डॉ. श्रीमाने राजपूताना का इतिहास खिन्द 2 पृ 774 पर दिया है।

इस ताम्रपत्र के धनुमार महाराणा प्रताप 7 घाटा नामक ग्राम पुरोहित राम भगवान राजी को पुण्याप दिया था। पहले इस गांव को महाराणा उदयसिंह न दान म दिया था परंतु भोगू दे की लडाई (हल्दीघाटी युद्ध जून 1576 ई) के शिको में उसका ताम्रपत्र लो गया इसलिए यह नया बनाकर दिया गया। इसकी प्राज्ञा भामाशाह के द्वारा पहली और पचोनी जेता न इस लिखा है।

पुरोहित राम मनाढय ब्राह्मण था वह कोठारिया के चौहानो का पुरोहित था। बनबीर के काल म कु भलगढ की गद्दी पर उत्पसिंह को बठाने बाल मरदारो में कोठारिया का रावत खान प्रमुख था। उस पर पूण विश्वास हाने के कारण महाराणा ने विश्वसनीय मवका को रावत से ही गिये थ उनम पुरोहित राम भी था। तब से उसक वंशज उदयपुर म रहत है।

मृगेश्वर का ताम्रपत्र

- 1 महाराजाधिराज महारा
- 2 णा श्री प्रताप स्यधजी आदे
- 3 सातु चारण कान्हा हे गाम
- 4 मीरघेसर दत्त मया कीधो
- 5 आघाट करे दीधो सवत् 1639 वर्षे
- 6 फागुण सुदी 5 दुए श्री
- 7 मुख वीदमान साह भामासाह

इस ताम्रपत्र को मुंशी देवीप्रसाद ने सरस्वती' भाग 18 सख्या 2 पृ 95 98 पर प्रकाशित कराया था। इसका आशय यह है कि महाराणा प्रताप के आदेश से शाह भामाशाह ने मीरघेसर (मृगेश्वर) नामक गाव चारण कान्हा को फाल्गुन शुक्ल 5, सवत् 1639 को दिया था।

मृगेश्वर गाव गोडवाड क्षेत्र में (वर्तमान पाली जिले में) स्थित है। कान्हा सादू चारण था और बित्तीड के निकट डुम्पखेडी का निवासी था। इसने महाराणा की सेना में हल्दीघाटी में युद्ध किया था। इस युद्ध के वर्णन के संबंध में उसने एक गीत बनाया जिसे डॉ. देवीलाल पालीवाल ने 'प्राचीन डिगल काव्य में महाराणा प्रताप' ग्रंथ में गीत सं 36 पर प्रकाशित कराया है।

मुंशी देवीप्रसाद ने इस ताम्रपत्र के साथ 'दन्तालपत्र' को भी प्रकाशित किया है। चारण लोग ताम्रपत्र के भाव को कठस्थ करने के लिये उग्र शब्द कर लिया करते थे, उन दन्तालपत्र कहा जाता था।

तिथि-पत्रक से ज्ञात होता है कि उक्त तिथि को गुरुवार नहीं अपितु शनिवार था।

बाधण का ताम्रपत्र

श्रीरामो जयति

श्रीगणेश प्रसादात्

श्री एकलिंग प्रसादात्

[भाला]

सही

महागजाधिराज महाराणा श्री
प्रतापसिंघ आदेशतु आयम आणदनाथ
वस्य हल 4 दुरी घरती गाव बाधण

सौधरी माह पली छे समद कीदी

स 1645 वर्षे आसाजब्द 7 दुव

थी मुख प्रति दबै साह भामा

यह ताम्रपत्र रामविश्वन जाशी विश्वनगढ को मिला था। इसका प्रमाणन आय रायचन्द्र तिवारी ने जनत आप दि युनिवर्सिटी फ्रांफ बोम्ब' वाल्युम 31 पाट 4 पृ 50 पर कराया था। प्रस्तुत ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा प्रतापसिंह के आदेश स म 1645 आश्विन कृष्णा 7 को आषस आणदनाथ के भीदरी के बाधण नामक ग्राम म 4 हल (1 हल=लगभग 3 बीघा) भूमि दी गई थी। इसे शाह भामाशाह ने जारी किया था।

गाव पडेर आ ताम्रपत्र

थी रामो जयति

थो गणपजी प्रसादानु

थी एकलिंगजी प्रसादानु

भाला (चिह्न)

सही (चिह्न)

सिव था मह र जाधिराज महाराणाजी थी प्रताप
सौधजी आदेशानु तिवारी सादुलनाथण
भवान काना गोपाल टीला घरती उदक आगे
राणाजी थोजी तावापत्र करावे दीघो थो
प्रगण जाजपुर ग गाम पडेर महे हल ११
घरत वीगा गारा करे दीघो थी मुप हुकम
हुओ साह भामा सवत १६४५ काती
मुद १५ महाराणाजी थो उदेसिधजी रा दत्त

इस ताम्रपत्र की फोटो-प्रति राजस्थान अभिलेखागार उदयपुर के कार्यालय म (फोटोग्राफ न 368) सुरक्षित है। इस ताम्रपत्र के अनुसार महाराणा प्रतापसिंह द्वारा तिवारी सादुलनाथ काना गोपाल को जहाजपुर परगन के अंतगत पडेर नामक गाव म 11 हल भूमि दी गई थी। इसे शाहभामा न सवत् 1645 कार्तिक शुक्ल 5 (24 अक्टूबर 1588 ई.) को जारी किया था। यह ताम्रपत्र महाराणा उदयसिंह द्वारा पून म दिय गये ताम्रपत्र का नवीनीकरण करके दिया गया है जो सभवत खोजया जाएगा।

डाइलाणा का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गुणोस प्रसादात्

एकलिंग प्रसादात्

सही

महाराजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिंघ
आदेशात्तु चाधरी राहीतास कस्य ग्राम
मघ कीधो ग्राम डाहीलाणा वडा
माहे खेत 4 बरसाली रा उदक आघाट
१ पेत बडयाना १ पेत राजाबो १ पेत
५१ पत्सा १ पाज्येजवा ४ भोग कलसी
४॥ अ (र) हट १ साणवे भाग कलमी
४॥ देसी स १६५१ ब्रप आमोज
मु० १५ दव श्री मुख बीदमान
ना भामा ।

डाइलाणा ग्राम गोडवड क्षेत्र (जिला पाणी) म स्थित है। एन ताम्रपत्र को शिवसिंह चौबल न राजस्थान भारती भाग 3 अफ 34, पृ 35-36 पर प्रकाशित कराया था। इसके अनुसार महाराणा प्रतापसिंह न चौधरी राहातास को डाईलाणा ग्राम म 4 खेत और 1 रहट लिये थे। इनम सतास विवरण दिया गया है। एन खेतों पर जो कर लिया जाता था उसका उल्लेख कलसी मे दिया है। कलसा अनाज मापन का एक पात्र होता था। पायला या पायला के साथ कलसी शब्द की माप विज्ञाप के अर्थ म प्राचीनकाल से उस क्षेत्र म प्रचलित था। गोडवाड के चौहाना के शिलालेख म इसका उल्लेख मिलता है। एस ताम्रपत्र को शाह भामा की उपस्थिति म दिशा गया था।

परधाना

श्री रामो जयती

श्री गुणोस प्रसादात्

श्री ऐकलीग प्रसादात्

[भाला चिह्न]

सही

- 1 स्वस्ति श्री कटक दन का डेरा मुखाने माहाराज श्रीराजम
- 2 हाराणा श्री प्रतापसिंघजी आदेशात्तु आचारज वात्रा प्रल

- 3 भद्र कस्य । अग्रचे० वेणीदास तो जगडा मे काम आ
 4 य्यो ने थे कड़ी चता करो मती रुगनाथ रो पात्री रेवे
 5 गा ऐक दाण रुगनाथ ने पेतावा भेजजो थे पो जमा पात्री
 6 रापजा रुगनाथ रे बाप थो हजुर ह थे कड़ी चता करो मती
 7 दुवे श्री मुप साहा भामा समत 1634 को पोस सुद १०

यह परवाग मूल रूप म जगदीशप्रसाद आचाय आचार्यों की पील जगदीश चौक उदयपुर के पास है । इसके अनुसार वेणीदास व मुद्र मे मारे जाने के बाद आचाय बाबा बलभद्र को महाराणा की ओर स यह सात्वनापत्र लिखा गया है । सभवन वेणीदास उमका पुत्र था । वेणीदास का पुत्र रुगनाथ था उसकी देगभाल की जिम्मदारी महाराणा स्वय ने अपने ऊपर ली थी । इन शाह भामा द्वारा स 1634 पोस शुक्ला 10 को लिखा गया था ।

साह अषेरज की उपस्थिति मे जारी किये गये ताम्रपत्र

ठीकुर्या ग्राम का ताम्रपत्र

श्रीरामो जयति

श्री गणेश प्रसादातु

श्रीऐकलिम प्रसादातु

[भाला]
सही

- 1 ॥ महाराजाधिराज महाराणा श्री जगतसिंघजी
 1 आदेशातु गढवी पीमराज जात घघवाडा
 3 कस्य १ गाव ठीकुर्यो वडा उदक आघाट क
 4 रे मया कीघो दुवे श्रीमुप प्रतदुवे साह अप
 5 राज लीपत पचोली केसोदास स्वदत पर
 6 दत जे हरत वीसघरा पस्ट वरस सेहमरा —
 7 ए वीस्टाअ जाइते क्रम सवत १६८५
 8 व्रपे असाड वदी 3 मुक्रे

ताम्रपत्र के बायीं ओर ऊपर से नीचे खड़ी एक पक्ति लिखी है—

१ भाडी पीमराज घघवाडाहे दीघोजी १

ताम्रपत्र के पृष्ठभाग में अथ व्यक्ति के हस्ताक्षरों में निम्न पंक्तिया प्रकृत हैं—

- 1 स० १७०२ वर्षे माह सुदी ५ गुर घरा वास की
- 2 घो तदी भया अर रागे श्रीजगतमधजी
- 3 गाम रो नाम करे वेमपुर नाम दाघो

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में स 1398 पर सुरक्षित है। यह वीरविनोद, भाग 3 पृ 380 एवं राजस्थान के इतिहास के स्रोत' (डा गोपीनाथ शर्मा) भाग 1 पृ 257 पर भी छप चुका है। इसके अनुसार महाराणा जगतसिंह की आज्ञा स गडवी (चारण) खीमराज दधिवाडिया को सवत् 1685 आषाढ वदी 3 शुक्रवार के दिन ठीकरिया ग्रामक ग्राम दिया गया। इसे शाह अपराज ने जारी किया और पचोली कंगोदाम ने लिखा था। ताम्रपत्र के पीछे लिखी हुई पंक्तिया स नात होता है कि स 1702 में महाराणा जगतसिंह खीमराज के घर ठीकरिया ग्राम में पघारे के तब उम गाव का नाम खीमराज के नाम पर वेमपुर रखने का आदेश दिया। उदयपुर के पुराने रेलवे स्टेशन के पास वेमपुरा अब भी विद्यमान है।

आघाखेडी ग्राम का ताम्रपत्र

श्री रामो जयति

श्री गणेश प्रसादातु

श्रीएकलिंग प्रभादातु

[भाला]
सही

- 1 ॥ महाराजाधिराज महाराणा श्रीजगतसिं—
- 2 घजी आदेशातु भट वासदेव कस्य गाम ॥
- 3 आघीखेडी उदक आघाट करे रामा अरपण
- 4 कीघो गडवी तोडरी तल्हेटी दुवे श्रीमुप
- 5 सवदत परदत जे हरत वीसघरा पस्ट वर
- 6 प सेहसराण वीसटाअ जाडीते त्रीम प्र
- 7 त दुवे साह अपेराज सवन् १६८५ वर्षे भा
- 8 दवा सुदी ८ गुरे सीपत पचोली केसोदाम

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में स 1661 पर सुरक्षित है। यह अब तक अप्रकाशित है।

इसके अनुसार महाराणा जगत्सिंह(प्रथम)के आदेश से भट्ट वासुदेव को आधीखेड़ी ग्राम रामावण वरके (दानरूप में) सन् 1685 भाद्रपद सुदी 8 गुरुवार को दान दिया गया था। यह ताम्रपत्र शाह अपराज की उपस्थिति में दिया गया।

ग्राम गुणहड का ताम्रपत्र

श्री रामा जयति

श्रीगणेशप्रसादातु

श्रीऐकलिंग प्रसादातु

[भाला]

मही

- 1 ॥ महाराजाधिराज महाराणा श्री जगत्सिंह
- 2 जी आदेशातु जोसी धरमदास कस्य गाम
- 3 गुणहड माहे हल १ ऐक री धरती उदक आ
- 4 घाट करे रामा अपरण कीधी डीणौरा पेह
- 5 ला पेत छ ज्या मीये हल ऐक री धरती दीधी
- 6 दुवे श्रीमुष प्रतीदुवे साह अपराज ली
- 7, पत पचोली केसादास सवदत परदत जे
- 8 हरत वीसधरा पस्ट वरस सेहसराण वी
- 9 सटाअ जाडीते काम सवत १६८६ व्रपे
- 10 भादवा वदी 10 सोमे पत धरमदास रा

यह ताम्रपत्र राजकीय अभिलेखागार उदयपुर में क्रमांक 941 पर सुरक्षित है।

इसके अनुसार महाराणा जगत्सिंह के आदेश से जोशी धरमदास को गुणहड ग्राम में एक हल धरती सन् 1686 भाद्रपद वदी 10 के दिन दी गई। इस धरमदास न लिखा है। इसको शाह अपराज की उपस्थिति में दिया गया।

★★

2. शिलालेख

सादडी की तारा-चावडी का शिलालेख

- (1) ॐ ॥ श्री गणेशाय नमः । श्री ब्राह्मण नमः ॥
- (2) (श्री) रक्ष्मीनारायणाय नमः ॥ श्री उमामह
- (3) श्वराय [राम्या] नमः ॥ अथ श्री नपविश्रमाय सम्य (या)
- (4) त् ॥ सवत् 1654 वर्षे शाक 1520 प्रवत्तमान
- (5) महाभागल्यप्रदवशापम(र)स कृष्णपक्षे द्वि
- (6) तीयाया तिथौ बृहस्पत(ति)वासरे श्रीसादडी
- (7) नगर ॥ महाराजाधिराज महाराणा श्री श्री
- (8) अमर शयजी विजयराज (ज्ये) उमवाली पाती
- (9) य कावडीय गोत्र श्रावक अरद विराजमा
- (10) साह श्री भारमल तद्गाया शीलालकारघा
- (11) रणी अनकतुल्य पुरुषाद (पेम्भ) महापुण्यकार
- (12) णी नादेवा गोत्रगायि (य) नीगगाजलनिमला
- (13) माल श्री कर्प रनाम्नि तयस (तस्या) पुत्रस्य
- (14) ताराचदस्य एकादशसतीसहित (?) सपुत्र्यथ (पुण्यार्थी)¹
- (15) श्रेयार्थी श्रीनारागावावि नामक तीर्थी कारित
- (16) तत्पुत्रेण साह सरताण (सुरताण)जीनाम केन प्रत (नि)
- (17) पत्यमान विजीयोना (विजयाना) [म्] शुभ भवतु । ८
- (18) यावत् कृष्णधृता घरा विजयते मावद्मुजगा
- (19) धिप पाताले पवमानपूरिततनुर्मावद्रवि
- (20) श्वद्र । तावत्तिष्ठतु तीर्थमेतदमल वा
- (21) यी महामडपा साह श्री सुरताणकेन वि
- (22) हित मागल्यपुष्टिप्रद ॥ श्रीरस्तु । श्री ॥

[¹ शुद्धम्प=स्य पुण्यार्थी]

ताराचद की छत्री में लगा हुआ शिलालेख

- पक्ति 1 ॥ श्री गणेशराय नमः ॥ स्वस्ति श्री ऋद्धि वृद्धि जयो मगला
भ्युदयश्च ॥ अथ श्री विक्रम सवत् 1648 वर्षे वशाख मासे कृष्ण
2 पक्षे अष्टमी तिथौ भीमवासरे गगाजलनिमली वा श्री
शोसवाल पाती कावेडिया गोत्रे शाह ठाकुर साहव श्री

- " 3 108 श्री भारमलत्री गृहभाया (यी) व पू श्री मेवाडी तत्पुत्र
शाह ठाकुर साहव श्री 105 श्री ताराचन्द्रजी
- ' 4 स्वर्गाह्वो जात तस्य पत्नि श्री ताराप्ते 1 श्री विजवणदे 2
श्री ममूरवदे 3 श्री साभागदे 4 श्री वीराङ्गदे 5
- ' 5 सहगत । पवनि केतु श्री सहगत 6 ॥ तथा ॥ गणिका कामरेया
1 गुणमूत्रदा 2 वसतमाला 3 फूलमाला 4 चोरी
- 6 ला 5 मोहिनी 6 एतानि सहगमन वृत ॥ सवत् 1649 वर्षे
कार्तिक सुदि 15 साम एषा छती बीनी ॥ श्रीरस्तु ॥
- ' 7- श्री छती रा श्री गोंडार व नवीन मूर्ती स्थापन सवत् 2013 चत्र
सुदि 10 शुक्रवासरे बीनी ॥ श्री रस्तु ॥

3. परवाना (स 1912)

श्री रामो जयति

श्रीगणेशजीप्रसादात्

श्रीएकलिंगजी प्रसादात्

[भाव का निशान]

[सही]

स्वस्तिश्री उम्पपुर मुभमुवात्रे महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सहर्षोत्सव ी
घादेगात् कावडया जवद कुनगो वीरचन्दरय मप्र थाग बडा वाना भामो
कावडया इ राजम्ह साम घमासु वाम चावरी करी जी की मरजाद ठठसू य्या ह
म्हाजना बी तम्ह वावनी त्या थीरा जो जीमण वा सीग पूजा हीवे जीम्ह
पहनी तत्रक धारे होतो ही सो मगला नगरसठ वेणीदास करसा वयो भर
वदयाफत तलफ धारे नही करवा दीदा यवारु धारी साचमी दीखी सा नये
कर सठ पेमवद न ह्वम कीदो सो बी भी भरज परा भर घात म्हे ह्वमर
मालम हुई सो घव तलफ माफक दमतुर के थ धारो कराय्या जा ी यागासु
धारा वस को आवेग जी क तराव हुवा जावना पचान वो ह्वुम कर दीय्या है
सा पेला तलक धारे होवेग । प्रवानगी म्हाता सरसीघ सवत् 1912 जठ
मुद 15 बुधे ।

[यह पत्र हिन्दुसंसार, दीपावली एक कार्तिक वृ 30 वि म
1982 म छपा है ।]

4. पट्टावली

नागपुरीय लु कागच्छ पट्टावली

॥ ॐ शिव ॥

॥ स 1616॥ चित्रकूट महादुर्गे वावडियावयो भारमल्लो धनो तपाणीयोभूत् ।
तेन श्री देवागरसूरीणामभिधान शुद्धक्रियाधारवत्त्व च श्रुतम् । तदादित एव
तदगुणरञ्जित चेतस्कोऽवदत् ।

श्लोक —

धयो देवागरस्वामी प्रदीपो जनशासन ।

एष एव गुरुर्मोऽस्ति धयोऽह तन्निदशकृत् ॥ 11 ॥ गा 9

इति भावनया शुद्धात्मभूद् भारमल्ल तस्मिन्वसरे तगत्यो भोमा नामा
नाहोऽस्ति । तद्गृहेषु पुण्ययोगाङ्गिणावत्त शख प्रादुरभूत् । तत्तान्निध्यात्
गृहेऽष्टादश कोटयो धनस्य प्रकटी भवति ।

अथ पडमासी प्रात शखदेवेन भोमावस्य स्वप्न दशन दत्त निवेदित
च ॥ भोमो साह त्वं शणु । तव भार्याया उदरे पुत्रीत्वेन कश्चिज्जीव
समेतोऽस्ति वावडिया भारमल्लभार्योदरे सुकृती कश्चन् जीव सुतो
भवतीर्णोऽस्ति । ततन्नुप्यप्रेरितो भारमल्लवावडियागृहे गमिष्यामि इत्याकण्य
भोमाकोवन्त् एव मा याहि यथाह करोमि तथा गच्छेत्युक्ते त नामेति
भणितम् ।

अथाहमुक्ते जाते सवस्वजनसहित शखस्वनजागरूकीकृतानेकलोक
स्वप्नस्थाले दम्पितावत्तशख निघायतिमहाध्यवस्त्रेणाच्छाद्य भामाको भारमल्ल
भवनाभिलमुमागतास्तमायास्तमालोक्य मानद साभार भारमल्लोऽभिमुख
मिलित पृष्ट च किमागमनप्रयोजन । प्रोच्यतामित्युक्तो भामाकोऽवदत् कर्णे
भो । सामयसम्बधिन् मम पुत्री तव पुत्रो भविष्यति तयो सम्बध कर्तु
श्रीफलस्थाने इदमदमुतमहात्म्य शख ददामि इत्यानतर्ये समुत्पन्नपरमामोदो
बहुतदानमानपूर्वकमगृहीत भारमल्ल गृहकोष्ठक। त समभ्यर्च्य सम्यक् चदन
चतुष्किकोपरि सस्थाप्य सस्मृतो देवस्तेनाष्टदशकोटि धन तत्र प्रकटित हत ।
एकदा तत्र वनान्त रुचमण्डपाद्यो धमध्यान विदधत् साधुगुणप्रामाभिरामा
श्रीदेवागरस्वामी शुद्धतपाधनो भारमल्लेन दृष्टो विधिवद् बन्दितश्च । शुद्धधर्मोप
देशामृत पीत श्रवणाम्याम् । अतिप्रसन्नन भारमल्लेन विपृष्टमहो । महान्
माग्योऽयो मे प्रकटितो यदीह्य गुणगौरयो दृष्टः सर्वोऽर्थो मे सत्स्यति । तदा
भारमल्लो ऽयं च बहव श्रावका जाता नागोरीलु कगणीया ।

अथ भारमन्त्रस्य भामानाममृतोऽजनि । महान् मह कृत । मन्त्र
 शान्तिनाऽऽविजनमोऽथा पूरिता प्रयपि ताराचन्द्राय पुत्रा अभवन् । तत्र
 भामाशाहतारा त्रयी विश्रुता तौ । स्वगच्छरागण बह्वो जना स्वगण
 पुन श्रीरागाजीतामात्यपद लब्ध्वा बलिनो गतौ । ताराचन्द्रेण माण्डानाम
 नगर स्थापितम् । सवत्र पौषशालादिवाणि स्थानानि धारितानि । स्थान
 स्यात्पुरे पुरे ग्राम ग्राम बहुजनम्यो धन दाय दाय स्वगणीया कृता ।
 श्रीनाभरीतुषाणोऽनिस्वातिमाप । पुन भामाशाहन त्रिम्बरमतगा
 नरमियरी स्वगण नदानीया । बहुस्व दत्त्वा 1700 गृहाणि त मात्मीयानि
 कृतानि । भिण्डरनादिपुरेषु तत्र च जात थायनगृहाणा चतुरशीतिसहस्राधिक
 तन्ममम् ।

(श्री अग्ररच न नाह्य तारा त्रिवित भामाशाह विजयन जिज्ञासा
 का समाधत्त 'गीयन तन्मात्रा वीरगातन' के अक्षराम प्रकाशित हुई थी ।
 उम्मी लेखमाला में वीरशामन क 1 जनवरी 1953 के अंक पृ 7 पर प्रकाशित
 ना। गी तुषागच्छ की मन्त्र भाषा की पट्टावली से उद्धृत य अक्षर हैं । इस
 तन्ममाम् में दो पट्टावलिवा प्रकाशित हो गई हैं— एक मन्त्र में एक दूसरी
 शीर्षभाषा में । मन्त्र भाषा की पट्टावली में लोकभाषा की पट्टावली की
 अपेक्षा विस्तार से वर्णन दिया गया है साथ ही लोक भाषा की पट्टावली भी
 मन्त्र की पट्टावली पर आधारित है ।)



5. साहित्यिक ग्रंथ

भामाबावनी

भामाबावनी की रचना विर' वारक नामक कवि ने की थी। इसके नाम का उल्लेख भामाबावनी के पद्य संख्या 53, 54 और 55 में हुआ है। इसके हमारे और तीसरे पद्य में भामाशाह के जाति, वंश परिवार गुरु और धर्म को विषय में परिचय दिया गया है। शेष चौथे से बावनवें पद्य तक भामाशाह के लग्य कर नीति सबधी बातें कही गई हैं। अन्तिम चार पद्यों में रचनाकाल और रचायिता का नाम अज्ञात बातें दी गई हैं।

इसका रचना काल स 1646 आश्विन सुदि 10 दिया है एक अर्थ प्रति में इसका रचनाकाल स 1648 दिया है।

इस कृति को पूणचन्द्र नाहर (कलकत्ता) के सग्रह (गुटका स 96) से प्राप्त कर अग्ररचद नाहटा न शोधपत्रिका वष 14 अंक 2 (अप्रैल 1963) में प्रकाशित कराया था। श्री नाहटा जी को कुछ समय बाद इस कृति की अर्थ प्रति भी मिली, इसके आधार पर पूर्व प्रकाशित भामाबावनी के पद्य स 5 28 52 की त्रुटि पंक्तियों को पूण किया। बाद मिली इसप्रति में रचनाकाल छताला क स्थान पर 'अठवाल (1648) दिया है।

इस काव्य की भाषा द्विगल पिंगल मिश्रित राजस्थानी है।

ऊकार सबद आदि धुर एह उपनो ।
ब्रह्मा विसन महस शिव सु सकति सपनो ॥
पछइ अखर पूछेवि बनि बावन करि बाधा ।
पछइ वेद व्याकरण लिखत जोतिप सह लाधा ॥
आरभि शृष्टि पाछइ अवर, मुणियाजस मन खनि मुने ॥
ऊकार शवद जन उचरइ, जिके भाम सु प्रसन तु नद ॥1॥

नमल गच्छ नागोरि नानि, देपाल जिमा गुर ।
दया धम्म दासिय देव चउवीम तिषकर ॥
पिरियावटि पृथिराज साड भारमल्ल मुणिज्ज ।
जसवत बाघव जोड करण क्लीयाण वहिज्जइ ॥
ताराचद लक्ष्मण राम जिम धित घोरण जोडी थयो ।
कूल तिलक अमग कावेडिया, भामो उजवालय भयो ॥2॥

मूल पेड भारमल्ल, साख कावेडिया सोहद ।
 पुत्र पौत्र परिवार मउरि, भभ्गण दति मोहद ॥
 लखमी नित लखगुणी फालतिया सुइज फूल फल ।
 विस्तरियो जसवास, कीर कवि करइ कतूहल ॥
 विस्तार घणउ चिट्टु खड विचइ, जुगि भालवणिए एहजण ।
 कलिकाल इयइ पीयल कुलड, भामउ कलपत्त भवण ॥3॥

सिध गोरखा सारिसा जती लखमण भदजेहा ।
 सीत मरीखी सती सामि चिति एक सनेहा ॥
 हगमत जिसडा हुवे सग स्व मि घरमि सुसच्चा ।
 पत्य जिसा पुरसात कह नम भरइन कच्चा ॥
 जन्वत जुधिठुल वाचजिम दा करणा हरिच सति ।
 एहवा मनिख इल उप्परइ भाम करइ तिणपय भगति ॥4॥
 धय जे नर धनवत धम्म अहनिम मन धारइ ।
 धय जे नर धनवत धत्र सु कुटुब सधारई ॥
 धय जे नर धनवत, ध्यान भगवत ही ध्याव ।
 वले धय ते वदा, खित्त वित विलसई पावइ ।
 न धमन ध्यान नदान पुन, कहा ने उधापन करइ ॥
 त निसा मनिख भामउ कहइ मुय भारगि हुइ भवतरइ ॥5॥

पाया आदर करउ त्रियउ मन मुद्ध लिलामा ।
 साहमा साहया मिलउ मगे साजण सहासा ॥
 भगति करउ भोजन सुतो प्रापण घर मारइ ।
 वारु जे हे वात तह नहवइ जमवारइ ॥
 साभलउ सीख सयणा नरा रुडव मनि पुरउ रला ।
 काइ नल वनक भामउ कह , अहनिम तरवर प्रावली ॥6॥
 आसा सपति अखी आस पूरइ अपरपर ।
 प्राप्त तण्ड सुपसाय याय जीवइ निरधन नर ॥
 आहूडी करि आस खरच घरि बइठउ लावइ ।
 मिरघ चरव वन मज्ज, मस पुर माहि बिकावई ।
 कुण लखइ पयइ हुटस्यइ कर् सौइ दिन पूरव सुखी ।
 साह कहइ भामा सयणा सरिस इम आसा सपति अखी ॥7॥
 इखल मन पीलियइ ओह रस हाइ अनापम ।
 अगर अगनि घरत, तास अतिवास थियइ निम ॥

चूनउ देतावता वधइ, रग नागर वली ।
 घृत भ्रमृत हुवे घणा मही जब मये महेली ॥
 चाल रग अने अवरि चढे घोया जिमवाणी धरइ ।
 पाय कहइ भाम गुणवत नर ए दुह पाया ही गुण करइ ॥८॥
 ईस पात रचउ एम, दान घूमर नव दोषो ।
 ए घूमर घाढवी, रूपउ म वाचइ रीषो ॥
 ए उमया चउ रूप, कृष्ण करि आयो ।
 ए कृष्णची कला हत करि शम्भु हसीयउ ॥
 अपना ग्रन्थ गा भ्रजनी, जायउ जिणि हनुमत ।जसउ ।
 पातरइ पुरुष किण ही कपरि कह भाम अचरज कितउ ॥९॥
 उमया आगलि ईम ध्यान नाटारभ धरतउ ।
 रुन्दावन महि बले, काह पिण यु द्विज करतउ ॥
 माष हुव मूरिबख महिल कहि सीस मु डायउ ।
 भाणमनी राउ भाज करे हयवर हासायउ ॥
 भाज ही लगइ आगा लगइ जे विरला त गजीया ।
 त्रिण कहइ भाम आगलि प्रिया, नर कुण कुण नह नच्चिया ॥१०॥
 ऊठउ उद्यिम करउ, समय नर नर हो सूता ।
 इग माया मोह मड कित्ता सू दा लिम सूता ॥
 घोर फिरद चउहटइ, सजन कीज्यो सहराई ।
 काया गढ कारिमउ कोट कागुरा न साई ॥
 जागमो जिवे इम जाजिनइ ते अविचल रवि घू तही ।
 भाम कहइ दान तप भाव विण, नर निद्रा साइवउ नही ॥११॥
 रोम न जीजइ हदे रोम मन जाणउ रढी ।
 रोम क्रिया रथ चढइ जमघर छाढइ जूडी ॥
 रोस क्रिया धीरोम, सजण दुरजण हुवे साई ।
 रोस पढेइ कुल रेह, बरे नह सगति कोई ॥
 रोस घी नट रूपक न हुइ कुलसत हुव आतया ।
 साह कहइ भाम मयणा मरिम छाति बरे भालउ लिमा ॥१२॥
 रोभे नइ बलि राव, थूष्ट वामेन ममप्पी ।
 रोभ गढह रूपक, कण तापक वध कण ॥
 रोभे न रघु राम लज बभीपण साधी ।

कृष्ण रीभवे बला, सहू घर घरजन साधी ॥
 सदतार सुयण गीभे सदा मुदिन दान अर्पति सही ।
 कवि विसउ दाम भामउ कहइ, नेट मूम रीभइ नही ॥13॥
 लिगमी दी लोभीया, निद्धि दीधी नव नदा ।
 विद्या दी निरघना, सलिल दे दियो समुदा ॥
 निबुली रूपत्र निलउ कुरुप पायो कुलवती ।
 पचायण पुरसात दीघ काया वृधदती ॥
 नागरवलि निरुपल रही, जे फल तूबणी ।
 करतार सरिस को न किक्कउ भाम कहइ सुयणाह मणी ॥14॥
 लखमण बाढे लीह सात घागुली लयाडइ ।
 ता रावण रूप चुप करि बाधे चाडइ ॥
 पइला समुदा पार लवधि लकागड लेो ।
 रामायण करि राम वगजी ल्यावठ वेगो ॥
 मामलउ मीग्य एहवी श्रवणि भाम कहे सुराणा मणी ।
 लोपीये लीह लछण लगे लीह न लापो कुलतणी ॥15॥
 एक वार दातार दान पिण एक न देवे ।
 एक वार भूभार लोह सग्रामि न लेवे ।
 एक वार कविघार प्राय गुण भणतउ चुक्कइ ।
 एक वार भूभार मांडि मन पाटू मुक्कइ ॥
 एक वार तुरी भउ आतनइ वदाचि कृपिती कही ।
 साह कहू भाम मुपमा सरिस नर इतना हसिबउ गही ॥16॥
 एको घाण उन्नमइ उगत्र सिगली जीवाडई ।
 एको ऊाइ अरव, तिमर तजा करि ताडइ ॥
 एको सीह अवाह नाम जिण गयघड नासइ ।
 एको चदण अछे वत्र परिमल सहू बोसइ ।
 कापुरिस घणे बून न बयु वयण भाम सकुचउ वरइ ।
 मुपुत्र एक बुलि सभमइ एक अनेका उडरइ ॥17॥
 झोलवि बत्ता वार अन्न म करिम गरड़ाइ ।
 आथम जाण आपणो पेड तन त्वच पराई ॥
 लख चउरासी लार घुरा की बेला घायउ ।
 दुबरस सुक्ख दयेवि, एक मानखा भव आयउ ॥

भाम कहे सोई रस भोग मा, गहिना मम अहि लोग मिसि ।
कीधी न टउड इणि भवि कई, भव अनेक भूलउ भमिसि ॥18॥

भालगता अन्तार रहसि करि कदे न रीभइ ।
पाखा माहि परवाण, भेद भीतरि नह भोजइ ॥
नव कुल अधिकउ नाग, मत्र गरुडा न मानइ ।
पीतलि नसि परखियइ वषइ नवि किणही जइव ॥
साचिज अहोनिअ दूध, धी नीव सोहि मोठी वानइ ।
भाम कहइ इता मूलगा भजा सुपणा ए निगुरा जवइ ॥19॥

घाडि तरति देखि बगा वाइ तरइ अयाणउ ।
सीह हाक साभले, स्याल किण-वाज समाणउ ॥
भगी बहती निरखि, वहे वाइ सजल सरोवर ।
घनवस मु निरघन बइसि षू करइ बराबर ॥
ज दियो जिये पायो तीये तणि चात नवि बोललउ ।
आपणो सकति मारइ उदिम भाम कहइ कग्विउ भलउ ॥20॥

आषा अजण दीये, पनगले दूध सपाव ।
नीच सगने उव- बले धन ऊसर बावै ॥
सज्जन सु साफल मित्त दुजण मु मडइ ।
मभा स्याल धरमीह छइल हुइ बुलवटि छइइ ॥
अहकार करे विप आचरइ निरखइ छाया गति नवी ।
साह कहे भाम सयणा सरि एता भूरिख मानवी ॥21॥

कमल च्यार नह कष श्रुष्टि ब्रह्मादि न सोई ।
राम श्रुष्टि जे रत्ने, हाथ पिण च्यारे होई ॥
शिव कीधी हुवे श्रुष्टि जोनि को मनिय न जामइ ।
शक्ति तणी हुवे श्रुष्टि श्रीया चढती सग्राम ॥
कीधी न शक्ति न शिवहि की चतुमुज किया न चार मुख ।
वृणहार श्रुष्टि भामउ कहइ पामे को विरलो पुरण ॥22॥

खल नर स्यु खल खट्ट करे स्यु बीज बीजे ।
तग रही जय तार तेथ वाइ दूर तविज्जे ॥
पास न रहइ प्रेम, मयल मन माहि न मुवाड ।
पढइ टाव पर भवइ चितउजि घ्यानि न चुक्कड ॥
जालधर भखरि जाम लो सोल हलता सारीये ।
साइ कहे भाम सुयणा सरिम बयरा दूर विडारिये ॥23॥

गलइ राह ले ग्रहउ, सूर महिर बे साहइ ।
 सुर नह पाल सकइ, नेट न सकइ निरवाहइ ॥
 किण हिक कारण कचण, काम पण किण हिक कीया ।
 पर भुय सहइ सपूर देखि नह पाछा दीया ॥
 मण वाच भ्रम्म वचन वदण, भला होय मुख भाखिये ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस, रिण सिर वदे न राखिये ॥24॥

घणउ होइ घरि घणउ, घणु घामिज्ज घणेरउ ।
 किण ही नावई काम कहउ जिस कारण केरउ ॥
 धरथ न बोइ धवर धरथ न न घापण घाणइ ।
 दया घम्म नह रडड, जीव सक न जाणइ ॥
 नर पच माहि बइसेइ नही आचरण कहिजइ इसउ ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस किसी आय मानव किमउ ॥25॥

नारी चरित नरिउ उदरि पिण गरभ उपज्जइ ।
 पवन पेडि पय पनग, ज्ञान दधि लहर गिगिज्जइ ॥
 द्द घटा ऊनिमे रुदन बाला पिण रीजई ।
 भामन को आघ्यार भग न विस्तारत प्रल ॥
 ए बात धगम धागा लगइ समि सहीया इत्रसुर ।
 बुण लखइ भेद भामउ कहइ च्यारे दिस बुभत चतुर ॥26॥

चदनि विनगा चील हेम परिमल हुइ हीणउ ।
 ससि खडउ सकलक देखि रवि राह दीणउ ॥
 सेस तणइ फणि सहस विक्ख मगजइ ही वसीयउ ।
 सलियण घणु समुद, खलू किण हेक न चसियो ॥
 किणहीक पपि चइ पराप्रम, मोटा तोही महण ।
 साइ कहइ भाम सयिणा रसि नर भज तिक नरे हवण ॥27॥

छल सीत छेलणे छने बल रावह छलीयो ।
 छल करि दारबइ छिद्र वृष्ण अहि दाणव कलीयो ॥
 भीम सु छल करि भला वीयउ पावन कवीरा ।
 छलिया जेण छय्यल तास अछे छन तेरा ॥
 छल थका न को छीपव सक जेम बेम जीय तही ।
 साह कहै भामो सणा मुणा छलहु बल छिप नही ॥28॥
 जस कारण जगदेव कमल दीधउ ककाली ।
 जस कारण बलिराव वचन वामण सु चाली ॥

सवा भार सोवण कण्ठ जस कारिण रुधाउ ।
हरिचंद जसरे-हेत, सरव ले रिपा समप्पउ ॥
मल मला नरा साह भाम कहै इम करि जस लीघाइता ।
जम काज आयि सा जाणज्यो, विलव न कीज्यो विलसता ॥29॥

भड सावण भादवे मेह महि मडइ भाभा ।
नव खडे नेपत्ति, अन ओपति वहे भाभा ॥
राजा परजा राव महु सुख माणइ साचा ।
विन छहरित विद्रवइ करइ घरि लीलस काचा ॥
मोभाग त्याग भाले सरो हुवे पुण्य प्राच्छिन पला ।
वरस रा भास भामउ वदइ विहु भल्ले वारह भला ॥30॥

नवल शिरी मानवी, अने असवार अयाणउ ।
नवल त्रियाः नानडी काम भारही त्रियाणउ ॥
नवल नेह निम्मियइ पुरप परदेमी पिल्लइ ॥
नवल सीह भर निसठ अडेवन मज्झि इक्लिई ।
हाक्त्याय काजेलि महेवइ, लालइ पालइ लीजियइ ।
साह कहइ भाम एता सरिस, कह न गाढ न कीजियइ ॥31॥

टींटीठी करि टेक समुद्र सुवयर सभारे ।
चच मरे जल च्यार बीच थइ दूर विडारे ॥
देवि गरूड करि दया जाव मन पखी जाणइ ।
प्रायउ वाहर घाप प्रबल पूरिवा पम्हाणइ ॥
धनवन समुद जाइ घूत्रियउ साम्हइ पायनमीयउ मही ।
माइ कहइ भाम आगला त गज्या जायइ नहीं ॥32॥

ठग ठाकुर गुरु ठोऽ पुहप है हीण परम्मल ।
मत्री मत्र विहूण छाव छर हर छीलर जल ॥
कन कट तऽ तुरग भवहि त्रिव कारक ऊपर ।
छड मत्र फल बडू मोय बलि सूक सरोवर ॥
असत वेद आसत द्विअ, नग लागे हुव निवसरा ।
साह कहै भाम सयणां सरिस एता परिहरियइ परा ॥33॥

डाक ढहकइ ताम जाम नीसाण न वजइ ।
मइ गन जा मद भरइ सीहमुज प्राण न मजइ ॥
सारा ती सग तेज उदे जा भाग न उगइ ।
कयक ती बल करइ पन्थवा धाण न पुगइ ॥

सिंह पति राय भारह सुतन, बधन् भाम इणपरि कहइ ।
 रिण खेन असत तो लग रहे जा सूर न एको सामहइ ॥34॥
 डलकत नेणा डाल, मइ घूमत महामय ।
 बाजइ जउवषवाव, गभे भाजत लख गय ॥
 फन सहस फुकार भाट वाहइ विष भोला ।
 कान गरुड काढत, पइस जिमजाय पयाला ॥
 ब्रह्ममट खण्डे इक्वीस बिचि सारीला ये हवइ सही ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस, इक माटा माटा नही ॥35॥
 गिरणउ तं निम्मिये उदर ऊपना ग्रधो मुखि ।
 पामिस जे क्यू पार देह दाखवे नही दुख ॥
 करिसि घरमे निकलक घाट मन भाहे घडियउ ।
 छूटिसि ग्रभ छोडतइ पासि माया षद पडियउ ॥
 घर घघ लोम लामइ धणु, घोमे रहियो मोह बिति ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस नर निरणउ चितारि निति ॥36॥
 ता जाल तुवणी सिला गज बावन साही ।
 पूर नदी परवाह वेग निण लीघ बहाई ॥
 ग्रही ममुत् बिच गई लिखत विधि तिसा लागी ।
 तम बोलि ग्राय मुखि एह गति कौण ग्रभागी ॥
 दोजे न दोष ग्रवरा नरा पूरव लिखियो पल्लिये ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस हलवां मघ न हल्लिये ॥37॥
 यिति कीधी थापना धरा ग्रवास तणी घुरं ।
 पनग मामव पेखि सकल थापिया सवे सुर ॥
 दस थाप्या ह्यपाल, ग्राप बल रहचउ ग्रगाणउ ।
 सात समुद नव दीप, मेरु पाखती मडाणउ ॥
 चिहू खाण जीव चउरासी लख मनिख जनम उत्तम दियइ ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस, काम एता करता कियइ ॥38॥
 दीधा जिण नरिदत सोई नर चावण देसी ।
 कीधा जिण एवाम क्यु हिक् सो चित करेसी ॥
 लख चउरासी जीव लेह जीण मारण लाया ।
 कहो नर बिम करइ रहइ धन धान सघाया ॥
 सिरो जियो जिक्को साहेव समघ सब घट मज्झि हज्जिसी ।
 भाम कहइ रखे ग्रारति भिदा, परमेसर सहूपुरिसी ॥39॥

धवल सबल धर धवल वसु खचवा भर बल ।
 जे भेटो ममत तोहा हसतीज बोहल ॥
 देखो ए दिस रात प्रबल गज पुरण न पसे ।
 गई पेरहु पाम बदल भई ऊजेस बने ॥
 सापुरस ऊन सीपालवो बेहु बराबर हुव बल ।
 साह कहै भामसणो सुणो, धन धनए घोरी धवल ॥40॥
 नादि नाग विप नमड हरख पामड अति हीयैइ ।
 नाट रभ मोहती कला अगि चउसठि कौयइ ॥
 नाद मृगध मोहता, नेह कणि मरण न जाणइ ।
 नाट माद जिमलो जीव चालोही जाणई ॥
 लिवलीण नाद सोहइ लब्धि प्राप अराहइ ईसवर ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस, एहनाद अपरम्पार ॥41॥
 पच तत्त्व तइ पिण्ड पच मिली पचउ भारी ।
 पच विपे पचरे सहू भोगवइ ससारी ॥
 पचै न्याव अयाय कूड भाचापिण कौजइ ।
 पजी सरिसी परा बहसि किण हालइ बीजइ ॥
 पाडवा पवि नीनो पृथ्वी कहऊ गल भगा कहइ ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस परमेसार पचा महइ ॥42॥
 फल्यो अ व बहु फाल फाल बबूले फलीयउ ॥
 पपी परसी जतउ, विमल छाया कजि वीयउ ॥
 बइठो हेठ बबूल मूल कटक बहु मुक्का ।
 तरे भ्रायो तलि अ व, पविन छाया फल पक्का ॥
 मन हुपा सुनी सुधिया मिटी खडियउ रलिणवट खरउ ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस, सुगुण निगुण नउ अतरउ ॥43॥
 बोल जितो बोलियइ नेट जितरउ निरवहीयइ ।
 गरप न हव गाठडो गठि विम रतन सु ग्रहीयइ ॥
 झालघइ नही घाडि धाग सागर विम धावइ ।
 सकइ मन स्यालधी बिडे विम सारदो वाधई ।
 सांभलउ सीन एहनी अचणि हरभे मुविचारो हियइ ।
 साह कहइ भाम सयणा सरिस बहने पशु न बालियइ ॥44॥
 भगवतइ बडी भाति कहउ किण बीधी कारणि ।
 बनि जिणकहरि बगइ बसाइ तिणही बनि धारणि ॥
 धारणि लविपवि काइ सक इक दाम न लखइ ।

पुरसातन अति प्रबल, निरुह अट्ठइजु निमइ ॥
 साह कहइ भाम मिधुर सदल बरइ जु कनखा कहई ।
 लामिवा मौल लेखइ नही मोह पराभव जई सहि ॥45॥
 मोटउ जे मेरुहर मेरु वसुधा पर मुखियइ ।
 वसुह घणइ विसतारि, रात समुदा विवि मुणीयइ ॥
 सात समुद घर सहित मुजे को रभ वीय भारी ।
 को रभ वपिल जसाह, सहु अगल साधारी ॥
 सह कहइ भाम ए भारसाहु, संसा सासा भात्यउसारब ।
 हर हीय सेसा सो हार हुअ गरवा तने वहउ गरव ॥46॥
 जल विण त्रिपा न जाय अन विण जिपति न ईखइ ।
 ज्ञान ध्यान गम अगम, रागुह विण कोइ न सीयइ ॥
 अघग घाग आसइ श्रवण विण पार न पावई ।
 मोहइ मह मेदनी अनल विण डट्ट न आवइ ॥
 घामियइ जम धन कारण, जिम धन कारणि घानियइ ।
 साह कहइ भाम सायणा सरिस प्रभुविण युगति न पामियइ ॥47॥
 रावण रहायो नही सीसा दसा बीसा मुत्रा स्यु ।
 चउदह चउकडि लगई त्रिपुर किहि राज बरइ त्यु ॥
 लव जिरा गढ लहइ समुद्र सारिखा सहाई ।
 कु भकरण साकिता मुज रख पालण भाई ॥
 असुरा सुरा अणग जिनेइ छेह नको आये छत ।
 भाम वहे एक सिर विहू मुते मूख जुग जोवण भते ॥48॥
 लालच म बउ लोभ लोभ वीघा जा बयू लामइ ।
 अब घरणि जे अछइ अवताइ बरसाइ आभइ ॥
 तिम पूरब अवतानि जीव मन माहे जाणइ ।
 अहनिअ जे आफल तिक्को तिम मिलसी टाणइ ॥
 पर निदा द्वा परि हरिपरा धम हत मनसा धरे ।
 साह वहे भाम सायणा सरिम कोई मत लालच करे ॥49॥
 बरपा रित बरपता महु जावा साउ सूवइ ।
 वसत वाउ वजियइ कहर कूपल नह सूवइ ॥
 वेसा नर वाय बघइ एम दीपक अउभायइ ।
 च्याखन त चरइ अठ कटालउ खायइ ॥
 सुर मध्य समुद्र पीघउ सुरा शिव तहि विप पीघउ सही ।
 कुण दीयइ सीख भामउ कहइ, नर साहजा पारउण नही ॥50॥

सिद्ध साधु साधवन्, उक्ती जागी सन्यासी ।
 सोभा सतावरी विप्र पट करम निवासी ॥
 ग्रहसठि तीरथ ग्रहइ, जात्र जमाता जायइ ।
 सुमनि यान सग्रह, नदी नव सय जल हायइ ॥
 जल श्रीय विद जिम जाइयइ थडीया कजि मरियउ घडउ ।
 वसि करउ पच भामउ कइ ज्यू घणी बताऊ हुकडउ ॥51॥
 वाप्रो परचउ खरो, आयि आपणी उपाई ।
 बुरे रखे बीमिस्यो भूमि ऊगरइ भलाई ॥
 चानारउ हरिचद नद वीसल वीसारउ ।
 करण भाज वा कम एम अखियात उबासु ॥
 लय कोई साधि न ले ग्यउ ले गज्या समबद लीयइ ।
 माट कह भाम सयणा सरिस, बला रहइ रूडा कियई ॥52॥
 सवन सालह समइ बरस छताला बरये ।
 भामू सुदि अपूण्य दमिम दिन मुहरत देख ॥
 सुभ बला सुभ नक्षत्र विदुर थापक बलाणी ।
 सुसव जिता ससारि सयल ससारि मुहाणी ॥
 सो वीघ भेट साह भामस्यु मनि मगण मञ्जन मनी ।
 कवि मुखे मुखे श्रीडा बरा बहु विस्तरु ए वावना ॥53॥
 हाम घाल गुण हुवइ माहि अक्षर हू मुक्ती ।
 कवित्त पुहप सोई कमल सूत्र जमुमाल सजुली ॥
 कू कू चदन कठिन उक्ति सरसति ले आवे ।
 नयणे सा निरखेवि वयण मइ धमी वाधाव ॥
 भारमल्ल मुनन सु भेट भल हूती नवनिध लाभ हूय ।
 घामीस विदुर दम उच्चरइ एह तिलक रुरि भाम तुष ॥54॥
 लल मय नव त्रे लीय हूनी ससि तप दिवापर ।
 पवन नीर परवेस मलिल नवि छडड मायर ॥
 घष्ट बला सु घटिग गा परषाह भर रिर ।
 सगत दीप द्विधमी मम जा जाइ घरइ मिर ॥
 भारमल्ल गुन नुक्रम भेदगर भनीय भल दानार मुस ।
 घामीस विदुर दम उच्चरइ सो भामा करि राव मुष ॥55॥
 दूवा नइ दूतडउ रिहि कि प्रस्ताव धरिग्रइ ।
 रिण्डिहिन माहि कवित्त नीन विणिहिन गा उग्रइ ॥

छन्द निजिहिक छन्द, जिको जेहवा छल जागइ ।
 तिन न तेहवी भेट माप स कीजइ प्रागइ ॥
 भारम्मल मुनन भाजग दलद दियो नाम दाता दुजे ।
 बावनी तणा मोटा विरुद, भाम तोहि छाजइ भुजे ॥56॥

इति श्री भामाशाह बावनी मपूण सवत् 1731 वर्षे थावण सुनि 11
 दिन लिपिहृता श्री मडता नगरे महाराजाधिराज महाराणा श्रीमत् श्री जसवतसिंह
 विजय राज्ये ।

शुभ भवतु सवन ॥

‘खुमाणरासो’ में वर्णित भामाशाह के अहमदाबाद-अभियान का वरण

‘खुमाण रासो’ की रचना जन मुनि दीनतविजय ने की थी। यह
 श्वेताम्बर जन तपागच्छीय साधु शान्तिविजय का शिष्य था। इसका जन्म का नाम
 दलपत था। इस ग्रंथ की एकमात्र प्रति भण्डारकर ओरियंटल रिसच
 इन्स्टीट्यूट, पूना में संप्रहित है। यह प्रति अतन्म प्रतित है, अतन्म रचनाकाल
 ज्ञात नहीं होना। ग्रंथ के निर्देशानुसार महाराणा सय्यासिंह द्वितीय (राज्य
 काल स 1767 से 1790)के काल में इसकी रचना कभी हुई थी। इस ग्रंथ
 में बप्परावल स महाराणा राजसिंह प्रथम तक के मेवाड के महाराणाओं का
 वरण है। मेवाड के महाराणाओं की खुमाण उपाधि होने से इस ग्रंथ का नाम
 खुमाण रासो’ रखा गया प्रतीत होता है। इसमें महाराणा प्रतापसिंह
 और महाराणा अमरसिंह के प्रमग में भामाशाह का भी वरण हुआ है।
 यहां अमरसिंह के काल में भामाशाह द्वारा अहमदाबाद अभियान का
 विवरण उद्धृत किया जा रहा है।

अमर तणो मत्रीश घर मुजबल भामो साह ।
 बुद्धिवत नें साम घम वाटक दूठ दुवाह ॥349४॥
 गयो साह गुन्द घरा सहरे अमदाबाद ।
 दुस्सासन दूकान परि साजस करि सवाद ॥3499॥
 बेठो सेठ मणी घणी गुमर कर गादीह ।
 बुद्धि अती ओ साप सु, साहजो सावनीह ॥3500॥
 साह करो खत अमशिरें दीजें अमनें दाम ।
 ब्याज बधोतर दीजीइ राखो माहरी माम ॥3501॥
 खजीनें खाली थयाह मज्ज विखो मेवाड ।
 अमर राण अम सिर घणी, अनडा विचें उनाड ॥3502॥

दाम सह देस्या पुरा, गिणस्यां तुम उपगार ।
 सरखी सुटी राण री, वणियो इस्यो विचार ॥35003॥
 व्याजें बाई वणी नहि व्यवहारे व्यापार ।
 करी घाण भामा तणी, कांणातर गिणवार ॥3504॥
 साह मामहसी वें कहें तुम विण कीनी घाण ।
 चाकर भामा साहरो विण री राखु घाण ॥3505॥
 साह वसैं मेवाड घर कावेडयो कुलभाण ।
 भामो भारहमल तणो राण तणो परधान ॥3506॥
 घमनें साह न घोनखो, साह भामो साह ।
 हुडी घश्वर मीढीइ, घायो इ इण ठाह ॥3507॥
 गुमर घाड गुमाशनें साह नें करी सलाम ।
 सहाजी भामो सिरघणी हु भोलग गुमान ॥3508॥
 मताए महाराज री, तु साहिव हु दाम ।
 घाप इहा घायो मले, विलसा रिद्ध विलास ॥3509॥
 तुख बाणोतर तेडियो जपे भामोमाह ।
 करो परज इण वार मे, मन उपजें ऊमाह ॥3510॥
 धन धन घबर जोईई, वार वरस लग तेह ।
 ते जायो मुझ घरथकी तुम चित घावें जेह ॥3511॥
 गयवर ने गूडर तुरग, पाखर वचव पनाण ।
 तग तोवरा सीदरा, सा न सवल सयाण ॥3512॥
 कप्यड पीया वापडा लीघो घन दो कोड ।
 साथ समान कियो सहू ममाकीया सजोड ॥3513॥
 घमदावाद सु भामासाह घमर पाम घायो उछाह ।
 घसी सरस सायें घसवार आए बाए घ त न पार ॥3514॥
 घनर राणधी रियो जुहार मिलिया साह थकी जूझार ।
 हिमत पन्डि पवडो तरवार ऊठावो थाणा इणवार ॥3515॥
 विपो भयो वारे वरम रण रसिया रजपूत ।
 घमर सुहड चित इस्यो, ए चावो रण घूत ॥3516॥

★★

इतिहासकारों और साहित्यकारों की दृष्टि में भामाशाह

कविराजा श्यामलदास

भामाशाह बड़ी जुरघत का आदमी था, महाराणा प्रताप सिंह के शुरू समय में महाराणा अमरसिंह के राज्य के 2॥ तथा 3 वष तक प्रधान रहा, इसने ऊपर लिखी हुई बड़ी-बड़ी लड़ाईयों में हजारों आदमियों का खर्च चलाया। यह नामी प्रधान सम्वत १६५६ माघ शुक्ल ११ (हिज्जी १००८ ता ६ रजब=ई १६०० ता २७ ज-यू-अ-रो) को ५१ वष ७ महीने की उम्र में परलोक को सिधाया, इसका जन्म सम्वत १६०४ आषाढ शुक्ल १० (हिज्जी ९५४ ता ८ जमादियुल अख्बर=ई १५४७ ता २८ जन) सामवार को हुआ था, इसने मरने के एक दिन पहिले अपनी स्त्री का एक बही अपने हाथ की लिखी हुई दी और कहा कि इसमें मेवाड के खजाने का कुल हाल लिखा हुआ है, जिस वकत तकलोफ हो, यह वही उन (महाराणा) की नजर करना। यह खरखाह प्रधान इस वही के लिखे हुए खजाने से महाराणा अमरसिंह का कई वर्षों तक खर्च चलाता रहा। मरने पर इसके बेटे जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने प्रधाना दिया था, वह वह भी खरखाह आदमी था, लेकिन भामाशाह की सानी का होना कठिन था।

जब कुंवर कणसिंह बादशाह जहांगीर के पास अजमेर गये, तब शाह जीवराज भी साथ था। जीवराज के पीछे भी महाराणा कणसिंह ने उमक बेटे अक्षयराज का प्रधाना दिया। इसके घर में तीन पुरत तक तान महाराणाओं का प्रधाना रहा। भामाशाह के वाप भारमल्ल का महाराणा सागा ने रणथम्भोर की किलेदारी दी थी जो पीछे सूरजमल्ल हाडा नू दी वाले का मिली इस पर भी किले रणथम्भोर में एतिबारी नौकरी और कुल कारवार भारमल्ल के ही हाथ रग था। इन खरखाह घराने के आदमी कुल अच्छे ही थे, परन्तु भामाशाह के नाम से ओसवाल जात के हर एक महाजन को घमड हाता है, जिस तरह वस्तपाल, तेजपाल जो अहलवाडे के सोलखी राजा प्रा के प्रधान थे और जहाने आबू पर जैन के मन्दिर बनवाये, वंसा ही पराक्रमी और तामी भामाशाह का भी जानना

साहिये, जिसकी नौकरी के एवज में वनमान समय तक उसको श्रीलाद का वडिजे महाजन महाजना के बड ज-मा में सदा पाहेने पेशानो र तिलक पाते हैं, अब उन लागे मे काई मशहूर आदमी नही रहा, तो भा भामाशाह का नाम कुन मुल्क मे मशहूर है ।'

(वीरविनाद, भाग 2, पृ 251-252)

डॉ रघुवीरसिंह

"मेवाड राज्य के कोप तथा आर्थिक मामला का कायमार प्रताप के राज्यारोहण के समय से ही भामाशाह के हाथ में रहा । अन्य सारे शासकीय मामले प्रधान रामा महासहाणी के अधीन थे । प्रताप द्वारा दिये गये ताम्रपत्रों आदि में सन् 1577 के उत्तराद्ध से भामाशाह का नाम लिखा मिलता है । सन् 1578 में रामा महासहाणी के स्थान पर भामाशाह को मेवाड राज्य का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया । प्रताप के देहावमान के बाद भी भामाशाह इसी पद पर बना रहा । भामाशाह ने जीवन भर अपने कर्तव्य को बड़ी योग्यता निष्ठा और तत्परता के साथ निभाया, अपनी अन्य स्वामिभक्ति तथा दूरदर्शितापूर्ण अच्छे आर्थिक प्रबंध द्वारा उसने प्रताप की सफलता में महत्वपूर्ण योग दिया ।'

(“राणा प्रताप” पृ 60)

DR KALIKA RANJAN QANUNGO

'The name of Bhamā Shah is remembered throughout Rajasthan with as tender affection and reverence as that of Maharana Pratap. Bhamā Shah was neither Netaji Palkar nor Nana Fadnavis 1

1 Netaji Palkar was a Maratha patriot and trusted lieutenant of Shivaji. Aurangzib tempted him out of his loyalty and religion and made him a muslim.

Nana Fadanvis otherwise a great diplomat and patriot of Maharashtra secreted public money and left behind a book to his family giving particulars of his buried wealth.

(Studies in Rajput History p 52)

रामवल्लभ सोमानी

'भामाशाह की सेवाओं से मेवाड की ही रक्षा नहीं हुई अपितु समस्त हिंदू जाति का महान् उपकार हुआ । अगर यथासमय धन की

सहायता भामाशाह परिवार नहीं देता तो संभवतः प्रताप मेवाड़ छोड़कर चले जाते। यहाँ का इतिहास कुछ और ही होना। प्रताप की त्याग बलिदान और अपूर्व साहस की कहानी के साथ-साथ भामाशाह की स्वामिभक्ति और देशभक्ति की गाथाएँ सदब गायी जाती रहगी।

(ऐतिहासिक शोध संग्रह पृ 71)

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

जा धन के हित नारि तज पति, पूत तज पितु शीतहि सोई ।
भाई सों भाई सर रिपु से पुनि मित्रता मित्र तज दुख जोई ।
ता धन को बनिया ह्व गियो न, दियो दुख देश के भारत होई ।
स्वारथ अप्य सुप्त्तरोई है तुमरे सम और न या जग कोई ॥”

कवि लोचनप्रसाद पाण्डेय

(1)

राणा मेवाड़-स्वामी अहह ! कर रहे आज हैं देश त्याग
वश स्थाति प्रतिष्ठा हित दुख बन के ले रहे सानुराग ।
पाते ही वृद्ध मत्री वह वणिक् अहो ! वृत्त ऐसा दुरत
घोड़े प हा सवार प्रखर गति चला शाहभामा तुरत ॥

(2)

जाते तत उठे यो वणिक् हृदय म आपत्री माय नाना—
क्यो तत हैं कहीं हो विवश ? पढ गये लोभ में ता न राणा ॥
प्राणा तो है न होगी इम तरह उ हे हीनता स विरक्ति ।
हे अर्थों की प्रतिष्ठा अविचल उनकी आत्मना आत्मशक्ति ॥

(3)

हा ! अथामाव ही के हित नृप तजना चाहते हैं स्वप्नेण ।
ऐसा मने किसी को उस दिन कहलें या सुना हाय क्लेश ।
हिंदू सूर्य प्रतापी प्रखरतर कहीं, शक्तिशाली प्रताप ?
पीडा श्रीडा प्रपूण प्रबल अति कहीं निन्द्य अर्थात् प्रताप ॥

(4)

ो एमी ही अवस्था कम समय हुई प्राप्त आगे कदापि,
तो तू स्वाभाविकी रे । बखिक् वृषणत वित्त लाना न पायी ॥
ह ह मेवाड़ भाता ! बल अनुपम तू दे मुझ आज ऐसा,
सवा म त्याग युवत प्रकट कर सकू वार सत्पुत्र जसा ॥

(5)

जो तू आधीन हाके यवन नपति के बलेश नाना सहगी
तो क्या आधीनता का धनल न हमको नित्य ही माँ दहेगी?
याके स्वातन्त्र्य रूपी मणि हम दु ख के घोर जाली निशा में
जावेगे क्या न हाँ हाँ ! तज कुल गरिमा, मृत्यु ही की दिशा म ॥

(6)

जो श्री मेवाड भू के शुचितर कुल के गव का कीर्ति कतु
जावेगा दूट ता क्या फिर धन जन तू सोच हो लाभ हतु ।
स लेंगे श्रू रता में हर कर रिपु जो सौम्य की वस्तु सागी
मारे मारे फिरेंगे तब हम मधु की मणिका ज्या दुखारी ॥

(7)

जावेगी मातृ भू जो निकल कर सभी हाथ से हाँ ! हमारे
तो क्या निर्वि प्राणी हम सब हैं व्यथ ही प्राण धारे ?
ऐसा होन न देंगे प्रण कर अपन प्राण का दान देके,
हृदि सवा चुकाते अमर निहित हा युद्ध म कीर्ति लेक ॥

(8)

जावेगा काम तरा कब यह धन हाँ रे ! कृतघ्नी कठोर,
भामा ! धिक्कार लावो तब धन बल को निन्द्यर नीच धार ।
भामा ने यो स्वय हाँ कटु वचन कहे वेद पाके अपार
आँखों से छूटन त्यो अहह ! फिर लगी रक्त पूर्णाश्रुधार ॥

(9)

स्वामी को शीघ्रता से वन-वन फिरता ढूँढता शाह भामा
पाता शतयत् पीडा लख गति नप के कम की हाम । वामा ।
मिधु प्रान्तस्थ सीमा पर जग पहुँचा तो वहा दूर ही से
देखा कौटुम्बियों के मुत नखर की विघ्नता त्याग जा स ॥

(10)

धाड़े म भूमि प आ घर कर ह्य की राम मत्री चला यों
माना मेवाड भू ने स्वमुन निकट है दून भेजा भना ज्यो ।
जाके भवाड मोर प्रभुवर पद प शीश मत्री भवाड—
बोना यो नम्रता स नयन युगन, स शक आसू दहा के—

(11)

हो जावेगी अनाथा प्रभुवर ! जननी ज म भूमि प्रमिद्ध
त्यागगे आप यों जा कुसमय उसका हा विपत्यान न विद्ध ! ।

राणा के चित्त में, यो विपम विपमयी, क्यों हुई आत्म ग्लानी ?
 घेर समार को आ जलद पटलता सूप की कौन हानी ?

(12)

याददा घ साथ मे थे घन जन, न रहा साधना का अभाव
 मनी ! मैंने दिखाये तब तक आपने क्षाय शक्ति प्रभाव
 हो कमे भोजनों का दुख जब हम को सालता रोज हाय ।
 रणा वश प्रतिष्ठा तब अथ अपनी है कहा, क्या उपाय ?

(13)

रोत हैं राजपुत्र क्षुधित दुखित हो, अम्ब की मोह देख ।
 छाती जाती फटी है तब इस शठ की हाय । रे कम रेख ।
 एमी दीन दशा में कब तक रिपु से युद्ध हा हा । करूंगा ?
 क्या श्री स्वाधीनता को अक्बर कर में सौंप स्वाहा करूंगा ?

(14)

पीछे पीछे सत्ता ही अहह ! फिर रही शत्रु सेना हमारे ।
 धीरे धीरे बुटुम्बी सुभट हत हुये युद्ध मे हाय सारे ॥
 सामग्री एक भा है समर हित नहीं पाम मे और शेष,
 भाभी भागो प्रजा भी समय फिर रही भोगता घोर बलेश ॥

(15)

हे मन्त्री ! सामना मैं कर अब सत्ता शत्रुओं का न और
 जाता हू मात्र भू को तजकर इस स दुख में अथ ठौर ।
 मेरी प्यारी प्रजा को अमित दुख मिले नित्य मर निमित्त,
 तीभी स्वातंत्र्यरूपी वह अहह नहा पा सकी श्रेष्ठ वित्त ॥

(16)

क्या ही निश्चितता स भय तज रिपु का सिन्धु के पार जाके
 है ह मन्त्री ! रट् । सुख सहित नया रक्षित स्थान पाके ।
 मेवाडोडार हतु प्रमुदिन करके राज्य की स्थापना में
 भीला की साथ लूंगा अगणित धन के साथ ही मे बना मैं ॥

(17)

धीन पाहा निराशा भरित वचन य भूप के वृद्ध मन्त्री
 शोकात हो गया हा । श्रवण कर गई टूटसी प्राण-तन्त्री ।
 परा में वृद्ध मन्त्री गिरवर नप के वृष छिन्न सता स
 श्री राणा स लगा यो तब फिर करन प्राथना नम्रता से ॥

(18)

स्वामी हो आप नामी उस धनचर की देह के अन्नदाता,
वाया है अन्न मैंने तब अब तक हूँ आपका अन्न खाता,
है द्वारा देह की जो रुधिर, वह बना अन्न से आप ही के,
स्वामी हो आप मने तन, धन, जन के भूमि सभी के ॥

(19)

मेरा सबस्व ही है तन सहित प्रभो ! भूपते ! आपका ही
भागी हूँगा न दू जो तन धन नृप के हेतु मैं पाप का ही ।
जूता मैं श्री पदों के हित यदि बनवा देह की चम से दू
ता भी है हाय ! थोड़ा यदि तब ऋण को मूढ मैं धम से दू ॥

(20)

है ही क्या शक्ति ऐसी प्रभुवर ! मुझमें दे सकू जो सहाय !
मिहीं की गीदडो से कब विपद घटी बोलिये हाय ! हाय !
तो भी है पास मेरे कुछ धन जिसको सौंपता आपको मैं
पाके सो भूप ! लौटे नहीं सह सकता मातृ भू ताप को मैं ॥

(21)

कीजे रक्षा प्रजा की इस धन बल स देश की जाति की भी
कीजे हे भूप ! रक्षा इस धन बल से वश की ख्याति की भी ।
होगी सर्वेश की जो अतुलित करुणा बात सारी बनेगी
जीतेगे शत्रुओं को विपम विपद म शीघ्र सारी कटेगी ॥

(22)

जो आया काम स्वामी ! यह धन, अपन देश रक्षा हिनाय
हो जाऊँगा सबश प्रभुवर ! ऋण से छूट के मैं कृताय ॥
हूँ राणा ! वश्य ती भी यदि बल रहता वृद्ध होता नी म
तो लेके खडग जाता समर हित जहाँ शत्रु होते वहाँ मैं ॥

(23)

मत्री हूँ वृद्ध हूँ मैं अनहित न कभी मैं कूँगा नरेश !
होगा कष्ट प्रणाना डरकर रिपु न त्यागना व्यथ देश ।
हूँ स्वामी ! लौटियेगा पितरगण का साधक स्वाभिमान
जान दूँगा हहा ! मैं प्रभुवर ! न कभी आपका अर्थ स्थान !

(24)

दखो तो जन्म भू है ददन कर रही हा ! हत जान होके
शक्ति, श्री बुद्धि विद्या रहित वह हुई आपको धाज लोके

माना को दुख रूपी अगम जलवि में मूर्च्छिता छोड़ जाना,
जाना मैंने यही है ऋण इस युग में पूणता से चुकाना "॥

(25)

बाले यो बात सारी सुन सचिव की वीर श्रीमान् राणा
हा ! मा भवाड भूमे ! मृतक समझ के तू मुझे भूल जाना ।
जो नाना आपणाए नीत नईं तुझ प एक से एक घाई,
मेरी ही मूर्खता से ग्रहह ! सकल ही रे गई हैं बुलाई " ।

(26)

मन्त्री की स्वामीभक्ति प्रकट लख तथा देख के आत्म त्याग
बोल राणा प्रतापी वचन नर पुन तुष्ट हो सानुराग ।
मन्त्री पा हो गया मैं सुचतुर तुमसा आज भामा ! कृताघ,
भेजा क्या मातृ भू ने रचकर तुमरो दश रक्षा हिताय ॥

(27)

पूजा के योग्य तू है, बोलिक सजिव श्रीशक्ति की मूर्ति तू है ॥
है आहा ! धर्म तरा वह धनु जन्मी भक्ति की मूर्ति तू है ॥
तुझ में स्वामी भक्ति चतुर मन्त्री वर आत्मा त्यागी वीर ।
भारत में क्या दुलभ है इस वसुधा में भी धार्मिक धीर ।

('प्रभा 5 जून 1913 ई खण्डवा)

3 सहायक ग्रन्थसूची

- 1 भा. डॉ. गोरीशंकर हीराचंद, उदयपुर राज्य का इतिहास जिल्द 1 2
जमेर, वि. स 1988
- 2 कविराव मोहनसिंह और सावलदान धाशिया (मम्भा) 'प्राचीन राजस्थानी
गीत भाग 11, साहित्य संस्थान राजस्थान विद्यापीठ उज्जयपुर
- 3 कविराजा श्व मन्त्री वीरविनोद, उदयपुर 1890
- 4 रहलात जगन्नीशसिंह राजपूताने का इतिहास पहला भाग हिंदी साहित्य
मंदिर जोधपुर 1937
- 5 गोपलीय अयोध्याप्रसाद राजपूताने के जनवीर हिंदीविद्यामन्त्रिर पहाडी
धीरज देहली 1933
- 6 दुग्गड बाबू रामनारायण, राजस्थान रत्नमार भाग 1 तरंग 2
मेवाड़ का इतिहास उज्जयपुर, 1913

- 7 पालीवाल, डॉ देवीलाल (सम्पा), महाराणा प्रताप स्मृतिग्रन्थ, साहित्य सस्थान राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर 1969
- 8 पालीवाल, डॉ देवीलाल, प्राचीन डिगलहाव्य म महाराणा प्रताप' भूमिका, अक्षयिमा प्रकाशन, उदयपुर
- 9 भटनागर, डॉ राजेन्द्रप्रकाश, (सम्पा), अमरकाव्यम्', उदयपुर,
- 10 भट्ट, रणछोड, 'राजप्रगति महाकाव्यम्'(सम्पा डा मोतीलाल मेनारिया) साहित्य सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर, 1973
- 11 भण्डारी, सुवसम्पतराज एव अय मोसवाल जानि वा इतिहास आनवास पञ्चशिख हाऊस, भानपुरा, इन्डोर, 1934
- 12 भानावत डॉ नरेन्द्र एव सोगानी डा कमलचन्द, (सम्पा) जन सस्वृति और राजस्थान, जयपुर 1975
- 13 डा रघुवीरसिंह महाराणा प्रताप, प्रकाशन विभाग, सूचना एव प्रसारण मन्त्रालय भारतसरकार, पटियाला हाऊस नई दिल्ली
- 14 शर्मा डॉ गोपीनाथ 'राजस्थान का इतिहास' प्रथम भाग शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा 1973
- 15 ' ' मेवाड भुगल सम्बन्ध' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1976
- 16 " " " 'राजस्थान के इतिहास के स्रोत पुरात्व भाग 1 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1973
- 17 श्रीवास्तव, डॉ आशीर्वादीलाल अक्बर महान् भाग 1 शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, 1967
- 18 सरकार जदुनाथ भारत का सय इतिहास मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल 1971
- 19 मुखेश, पद्मकुमार जन मामाश ह ऐतिहासिक नाटक प्रयमावृत्ति नाट्य म प्र
- 20 सोमानी, रामवरुण ऐतिहासिक शोध मग्रह हिन्दी साहित्य मन्त्र जोधपुर 1960
- 21 हेमरतन गोरा पद्मिनी कथा चक्रपट्ट राजस्थान प्रच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

पत्र-पत्रिकाए

- 1 त्यागभूमि — वर 3 अक 4
- 2 मम्भारती — (पिलानी) वप 15 अक 3 (अषट्ठवर 1967) ।
- 3 वीरशासन — 1 दिस 1952 16 दिसम्बर 1952 1 जनवरी 1953
- 4 शोधपत्रिका — (उदयपुर) वप 14 अक 1 वप 14 अक 2,
15 वप अक 1, वप 19 अक 4
- 5 हिन्दुसंसार — दापावली, अक कार्तिक वृ 30 स 1982 वि

ENGLISH

- 1 Beveridge Henry— English Translation Akabar Nama Vol
2 3 Asiatic Society of Bengal, Calcutta
- 2 David Major Alfred— Indian Art of war Atmaram and sons
Delhi
- 3 Qanungo Dr Kalika Ranjan — Studies in Rajput History
(S Chand & Co Fountain Delhi 1959)
- 4 Sarakar Jadunath— Military History of India
- 5 Sharma Dr G N — Social Life in Medieval Rajasthan 1500
1800 A D (Lakshmi Narain Agarwal Agra 1968)
- 6 Somani Ramvallabh— History of Mewar part 1 (Jaipur 1976)
- 7 Tod Lieut Col James — Annals and Antiquities of Rajasthan
Vol I (m/s Routledge & Kegan Paul Ltd
London Reprinted in India by M N
Publishers New Delhi 1983)



मेवाड़ में जैनधर्म का योगदान

जनधर्म बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। यद्यपि कभी यह सम्पूर्ण भारतवर्ष में फैल चुका था परन्तु कालान्तर में इसका विशेष प्रचार प्रसार हिन्दुधर्म के आगमन के बाद ही हुआ। विशेषकर राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक और पंजाब में प्रचलित रहा। जनधर्म के सिद्धांतों और शिक्षाओं ने भारतीय समाज को बहुत प्रभावित किया। इस धर्म में स्त्रियों के सम्मान को बढ़ाया और उनके भी अधिकारों को अधिकारिणी माना। भारत में प्रचलित मासाहार की बहुलता का जनधर्म के विकास के कारण भारी धक्का लगा और यहाँ अधिकांश लोग पुनः शाकाहारी बने। यद्यपि जिन लोगों ने जैनधर्म अंगीकार नहीं किया परन्तु उन्होंने भी मासाहार के दुर्गुण और शाकाहार के सद्गुण को वैज्ञानिकरीत्या समझा और शाकाहार को अपनाया। इसी से भारत आज शाकाहार प्रधान देश माना जाता है। शूद्रों का समाज में बहुत निम्न स्थान था। शूद्रों के उत्थार के लिए जनधर्म में समानता को मानते हुए जाति-पाति के भेद-भाव को समाप्त किया गया। जनधर्म में पुरुषार्थ को प्रधानता दी गई है और इसी के द्वारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है। धर्म-पालन में भी कम को प्रधानता दी जाती है। कहा जाता है—कर्म सूर्य से धर्म सूर्य।

जनधर्म का इस देश में ही स्वतंत्र रूप से विभिन्न दर्शनों और धर्मों की भाँति उद्भव और विकास हुआ था। इसलिए जनधर्म में प्रचलित समस्त मार्गए इसी देश की देन हैं किसी अन्य देश की नहीं जो पारम्परिक है।

राजस्थान में प्रारम्भ से ही जनधर्म का पलायन हुआ था। चित्तौड़गढ़ के पास माध्यमिका (प्राकृत रूप—मज्जिमिका) नामक नगर जो अब नगरी नाम से प्रसिद्ध है प्राचीन काल में जना का भी उच्च केन्द्र था। कहा जाता है कि मयुरा में हुई सगिति में भाग लेने के लिए मज्जिमिका से भी जनाचार्य गये थे। मज्जिमिका के उजड़ जाने के बाद चित्तौड़दुर्ग जनधर्म के दिगम्बर एवं श्वेताम्बर मतों का प्रमुख स्थान बना। मेवाड़ की प्राचीन राजधानी नागदा और भाड़ा भी जनधर्म के अच्छे केन्द्र थे। मारवाड़ में भी नमाल जालोर नाटोल नाडलाई, धाबू जसलमेर आदि जनधर्म के प्राचीन केन्द्र रहे।

जनधर्म के फलन फूलन की दृष्टि से मेवाड़ का नाम सर्वोपरि है। यहाँ पर जनधर्म ने समाज के हर प्रकार के क्षेत्र में विशिष्ट पुरुषों को जन्म दिया। राजनीतिक, सैनिक और प्रशासनिक क्षेत्र में हमीर के काल में जाल महता राणा लाखा का मंत्री नवख्ता गोत्र का रामदेव कुभा के काल में

बेला मडारी गुणराज जीजा बघेरघाल धरणाक शाह सागा द्वारा नियुक्त
 रणधम्मोर का किल्लार भारमल जो राणा उदयसिंह के काल में उच्चपत्त पर
 रहा, राणा रतनसिंह के काल में उसका मंत्री नरमशाह राणा प्रतापसिंह का
 मंत्री भामाशाह राणा अमरसिंह का मंत्री जीवाशाह राणा कर्णसिंह का मंत्री
 अणयराज राणा राजसिंह का मंत्री दयालशाह राणा भीमसिंह का मंत्री सोम
 दास गांधी मेहता गालदास मेहता देवीचंद आदि क नाम विशेष रूप से उल्ले
 खनीय हैं। इन्होंने देशभक्ति और स्वामिभक्ति में इतिहास में अपना विशिष्ट
 स्थान बनाया। चित्तौड़ का राज्य पुन प्राप्त करने में जाल मेहता से हमीर
 को बड़ी सहायता मिली थी। राणा सागा के समय तोलाशाह का वस्त्र का
 व्यापार चीन और दूर देशों में चलता था। उदयसिंह को चित्तौड़ पर आधि
 पत्य कराने में चीन मेहता ने जो दान दिया था। बीकानेर के कमचल बच्छा
 यत मेहता के वश में, जो भामाशाह की पुत्री जगीसा बाई से चला, अणवरचंद
 मेहता का मांडलगढ़ की किल्लदारी सौंपी गयी थी।

जनवीरो की कई स्त्रियां ने जीहूर में अपने प्राणों की धाहूती दी कई
 मती हुई और कुछ युद्ध में भी लड़ी। दयालशाह की पत्नी पाटनदे ने पति
 के साथ रहकर युद्ध में वीरता दिखाई थी और अंत में मुसलमानों के हाथ में न
 पडे इस विचार से दयालशाह अपना स्त्री को मार कर लाट आया। इसी प्रकार
 जनधमानुयायिया ने मेवाड़ में धर्म सभ्यता समाज ललित वलाधो स्थापत्य मूर्ति
 चित्रकला, संगीत आदि और साहित्य के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान किया।
 आहाट में अखिल जन प्रथो की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों पर मेवाड़ चित्र
 कला के सबसे पुराने चित्रासन मिलते हैं जिससे उस पृथक शैली के विकास का
 पता चलता है। यह प्रथ 13 वी शती के मिले है। थावप्रतिप्रमाणमूर्त्तूर्णी
 (स 1309) की यहां पर चित्रित प्रति आजकल बोस्टन संग्रहालय (अमरिका)
 में सुरक्षित है।

प्रायः इन जनघावर्त्तियों ने उत्तर धार्मिक सहिष्णुता का परिचय
 दिया और मेवाड़ के गौरव सम्मान और प्रतिष्ठा को संरक्षण बनाय रखने में
 उपयोगी भूमिका अदा की।

जनधर्म के कुछ सम्प्रदायो जस तपागच्छ तरापथ आदि की स्थापना भी
 मेवाड़ में हुई थी।

अधिनाश जैन मूल में राजपूत या क्षत्रिय वशी थे। जनों के रोज एव
 चापे ज्या की त्या राजपूतो के समान पायी जाती हैं मेवाड़ में जनधर्मों प्राय
 मंत्री प्रधान किल्लदार फौज के अधिपति (सेनापति) आदि पदा पर रह

44/58



द्विप्रकाश भटनागर

सितम्बर 1942

हानजी का हाटा, उदयपुर

ए (इतिहास),

च डी (इतिहास)

गचाय (स्वर्ण पदक प्राप्त),

ए (जाम),

डो (आयुर्वेद)

र राजकीय आयुर्वेद महा

विद्यालय उदयपुर (राजस्थान)

उदयपुर का इतिहास,

आयुर्वेद का इतिहास

भवन स्त्रीरोगविज्ञान,

भवन मानस रोगविज्ञान,

आयुर्वेद प्रथम कल्याणकारक-

अभियान आदि 15 से अधिक

300 से अधिक लेख एवं

प्रकाशित ।